UGPA - 103
लोक नीति - I

।। सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ।।
उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

खण्ड
1
लोक नीति : अर्थ और प्रकृति

इकाई- 1

लोक नीति : अर्थ और प्रकृति 5

इकाई- 2

नीति चक्र : नीति - निर्माण की बाधाएँ 15

इकाई- 3

लोक नीति- निर्माण का माहौल 24

इकाई- 4

लोक नीति के अध्ययन का महत्व : आधुनिक परिदृश्य 35

इकाई- 5

नीति- विज्ञान की नयी विधाएँ 43

UGPA-103

लोकनीति–I

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय प्रयागराज,उत्तर प्रदेश

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रो0 सत्यकाम — कुलपति
उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 सन्तोषा कुमार — निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा,
उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो0 वी. के. राय — राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो0 नन्द लाल भारती — लोक प्रशासन विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

प्रो0 पंकज कुमार — राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ0 दीपशिखा श्रीवास्तव — सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान
उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

डॉ0 सोहिनी देवी (खण्ड–01 एवं खण्ड–03) — सहायक आचार्य, लोक प्रशासन
उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

श्रीमती कामना यादव (खण्ड–02) — सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान
उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सम्पादक/परिमापक

डॉ0 आनंदानंद त्रिपाठी — सह–आचार्य, राजनीति विज्ञान
उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

समन्वयक

डॉ0 सोहिनी देवी — सहायक आचार्य, लोक प्रशासन
उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

मुद्रित– अक्टूबर, – 2024
उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज – 2024
ISBN- 978-93-48987-64-8

सर्वाधिक सुरक्षित। इस पाठ्य सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से श्री विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, 2024

मुद्रक – के0 सी0 प्रिटिंग एण्ड एलाइड वर्क्स, पंचवटी, मथुरा – 281003.

खंड–1: लोकनीति : अर्थ और प्रकृति

इस खंड में 5 इकाइयां हैं जो कि लोक नीति के अर्थ, प्रकृति, नीति–निर्माण, नीति चक्र आदि की विभिन्न अवधारणाओं से संबंधित हैं।

इकाई 1 : लोक नीति : अर्थ और प्रकृति : इस इकाई के तहत लोक नीति को परिभाषित करते हुये, उसके प्रमुख प्रकारों एवं प्रकृति के बारे में विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। साथ ही लोक नीति के महत्त्व को भी रेखांकित किया गया है।

इकाई 2 : नीति चक्र : नीति–निर्माण की बाधाएँ : इस इकाई में यह बताया गया है कि नीति का निर्धारण कैसे किया जाता है एवं नीति चक्र के अंतर्गत आने वाले चरणों का वर्णन किया गया है। साथ ही इस इकाई के अंतर्गत नीति–निर्माण में आने वाली बाधाओं की भी चर्चा की गयी है।

इकाई 3 : लोक नीति–निर्माण का माहौल : यह इकाई नीति–निर्माण के माहौल से संबंधित है। इसके तहत राज्य एवं शासन व्यवस्था की प्रकृति की चर्चा की गयी है। साथ ही नीति–निर्धारण में सरकारी, गैर–सरकारी प्राधिकरणों, संस्कृति, सदाचार एवं मूल्यों की भूमिका का भी वर्णन किया गया है।

इकाई 4 : लोक नीति के अध्ययन का महत्व : आधुनिक परिदृश्य : इस इकाई के अंतर्गत लोक–नीति के अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व पर चर्चा की गयी है। साथ ही भारत में लोक–नीति के अनुभव एवं लोक–नीति के आधुनिक परिदृश्य के बारे में विस्तार से वर्णन किया गया है।

इकाई 5 : नीति–विज्ञान की नयी विधाएँ : यह इकाई नीति–विज्ञान की नयी विधाओं से संबंधित है। इसके तहत नीति–विज्ञान के अर्थ एवं महत्त्व को स्पष्ट करते हुये नीति–विश्लेषण एवं नीति–विज्ञान के नए आयाम एवं दिशाओं पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही नीति–विज्ञान की नयी विधाओं की भी चर्चा की गयी है।

इकाई–1–लोकनीति : अर्थ और प्रकृति

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 परिचय

1.2 लोक नीति का अर्थ एवं परिभाषा

1.3 लोक नीति के प्रकार

1.4 लोक नीति का महत्त्व

1.5 लोक नीति की प्रकृति

1.6 लोक नीति एवं प्रशासन

1.7 सारांश

1.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के पश्चात आप,

- लोक नीति के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
- लोक नीति को परिभाषित कर पाएंगे।
- लोक नीति के विभिन्न प्रकारों की चर्चा कर सकेंगे।
- लोक नीति की प्रकृति एवं महत्त्व पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- लोक नीति एवं प्रशासन के संबंध पर विचार कर सकेंगे।

1.1 परिचय

एक अकादमिक अवधारणा के रूप में, 'लोक नीति' 1950 के दशक की शुरुआत में उभर कर सामने आयी और तब से यह नए आयाम प्राप्त कर रही है। यह सामाजिक विज्ञान की एक शाखा के रूप में पहचाने जाने के लिए संघर्ष करती रही है। सरकार के उत्पादों के अध्ययन के रूप में, लोक नीति राजनीति विज्ञान, लोक प्रशासन, अर्थशास्त्र, प्रबंधन जैसी विभिन्न शाखाओं के कई पाठ्यक्रमों में महत्वपूर्ण संघटक की भूमिका निभाती है। विकास इतना तीव्र है कि कई शोधकर्ता, शिक्षक, लोक प्रशासक अब महसूस करते हैं कि यह अधिक से अधिक अनियंत्रित होता जा रहा है। पुरानी सीमाओं के स्थान पर इन शाखाओं में लोक नीति को शामिल करना आवश्यक हो गया है। इसके अलावा, अंतःविषय गुणवत्ता लोक नीति के क्षेत्र को रोचक और विचारोत्तेजक बनाती है।

'लोक नीति' एक ऐसी अवधारणा है जो अब काफी लोकप्रिय हो गई है। इसका उपयोग हमारे दैनिक जीवन और हमारे अकादमिक साहित्य में बड़े पैमाने पर किया जाता है जहाँ हम प्रायः राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, नई शिक्षा नीति, मजदूरी नीति, कृषि नीति, अमेरिकी या फ्रांसीसी विदेश नीति आदि का उल्लेख करते हैं। यह एक ऐसा क्षेत्र है जो उन क्षेत्रों से संबंधित है जिन्हें सार्वजनिक माना जाता है। लोक नीति की अवधारणा मानती है कि जीवन में प्रभाव का एक क्षेत्र है जो निजी या विशुद्ध रूप से व्यक्तिगत नहीं बल्कि साझा है। अतीत में, इस विषय के अध्ययन पर राजनीति विज्ञान और लोक प्रशासन के विद्वानों का वर्चस्व रहा है, जिन्होंने नीति की विषय–वस्तु, नीति–निर्माण की प्रक्रिया और कार्यान्वयन पर अधिक ध्यान केंद्रित किया है। नीति विज्ञान की अवधारणा को सबसे पहले 1951 में **हेरॉल्ड लॉसवेल** ने व्यक्त किया था। सामाजिक विज्ञानों के भीतर लोक नीति के अध्ययन ने पिछली सदी के उत्तरार्ध के दौरान महत्व प्राप्त किया है। हालाँकि लोक नीति पर कुछ लेखक सुझाव देते हैं कि आधुनिक नीति का अध्ययन 1920 के दशक में शुरू हुआ था, परन्तु पुराना साहित्य जिसमें नीति का अध्ययन स्थापित किया गया था, वह बहुत पहले का है, जबकि एक विशिष्ट नीति विज्ञान के विकास का पता हेरोल्ड लासवेल के लेखन के माध्यम से 1950 के दशक में लगाया जा सकता है। इसलिए, यह उचित रूप से तर्क दिया जा सकता है कि लोक नीति ने पिछली सदी के मध्य में ही अकादमिक दर्जा प्राप्त किया और बहुत संघर्ष के बाद, इसने एक विषय के रूप में अपना स्थान अर्जित किया।

1.2 लोक नीति का अर्थ एवं परिभाषा

लोक नीति पर चर्चा से पहले सर्वप्रथम "लोक" शब्द को समझना बहुत ही महत्वपूर्ण है। हम प्रायः इन शब्दों का प्रयोग करते रहते हैं जैसे कि "लोक हित", लोक मत "लोक क्षेत्र", "लोक स्वास्थ्य" और इसी प्रकार के अन्य शब्द इत्यादि। शुरुआती बिंदु यह है कि लोक नीति का सम्बन्ध उन क्षेत्रों से होता है जो सार्वजानिक होते हैं तथा जो निजी क्षेत्र के विलोम होते हैं। लोक आयाम का अर्थ प्रायः लोक स्वामित्व अथवा लोक कार्यों के लिए नियंत्रण करना होता है। मानव की सभी गतिविधियों के प्रभाव क्षेत्र से लोक का स्वरुप बनता में है जिसमें सरकार के हस्तक्षेप अथवा साझी कार्यवाही की आवश्यकता होती है। हालाँकि, यह विवाद सदैव बना रहता है कि सार्वजानिक क्या है और निजी क्या है।

लोक–नीति के बारे में विभिन्न अवधारणाएँ हैं एवं कई विद्वानों ने इसे भिन्न–भिन्न प्रकार से परिभाषित करने का प्रयास किया है। लोक–नीति के अर्थ की व्याख्या करने से पूर्व आइये इसकी महत्वपूर्ण परिभाषाओं पर गौर करें।

थॉमस आर.डाई. के अनुसार "सरकार जो कुछ भी करना चाहती है या नहीं करना चाहती है लोक नीति कहलाती है।"

कार्ल जे. फ्रेडरिक के शब्दों में, "लोक नीति किसी व्यक्ति, समूह या सरकार द्वारा किसी निश्चित वातावरण में प्रस्तावित कार्यवाही है जो अवसर और बाधाएं प्रदान करती है, जिसका उपयोग नीति किसी उद्देश्य को प्राप्त करने या लक्ष्य प्राप्त करने के प्रयास के लिए करती है।"

रॉबर्ट आइस्टोन के अनुसार "सरकारी वर्ग का अपने आसपास की चीजों से संबंध लोक नीति कहलाता है।"

रिचर्ड रोज के शब्दों में "लोक नीति एक निर्णय नहीं है बल्कि क्रिया की एक प्रक्रिया अथवा प्रतिरूप है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि लोकनीति नीतियों का ऐसा समूह है जो जनहित और समाज के कल्याण को सुनिश्चित करने के लिए सरकार या शासक संस्थाओं द्वारा बनाई और लागू की जाती हैं। लोकनीति का उद्देश्य समाज के सभी वर्गों को समान अधिकार, सुरक्षा और विकास के अवसर प्रदान करना है।

लोक नीति के अर्थ को निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है:

1. लोक नीति लक्ष्योन्मुख होती है। लोक नीतियाँ सामान्यतः सरकार के विचाराधीन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जनता के अंतिम लाभ के लिए बनायी और क्रियान्वित की जाती हैं। लोक नीति के निर्माण और कार्य चयन का उद्देश्य सामान्यतः जनता के सर्वोच्च हितों की पूर्ति करना तथा सरकार के विचाराधीन उद्देश्यों की पूर्ति करना होता है। लोक नीति से सरकारी योजनाएँ स्पष्ट होती हैं।

2. लोक नीति वह होती है जिसे सरकार वास्तव में करने का निर्णय लेती है या करना चाहती है। यह एक निश्चित प्रशासनिक व्यवस्था और राजनीतिक परिवेश में सरकारी वर्ग के विशिष्ट कार्य क्षेत्र से संबंधित होती है। इसे कानून, अध्यादेश, न्यायालय के निर्णय, कार्यकारी आदेश आदि कई रूपों में व्यक्त किया जाता है।

3. लोक नीति सरकार की सामूहिक गतिविधियों का परिणाम होती है। अर्थात् यह सरकारी अधिकारियों और कर्मचारियों की सामूहिक गतिविधियों का एक पैटर्न या प्रक्रिया होती है न कि उनका अलग–अलग निर्णय।

4. लोक नीति सकारात्मक है क्योंकि यह सरकार की चिंताओं और किसी विशिष्ट समस्या के प्रति उसकी कार्रवाई को स्पष्ट करती है। लोक नीति को कानून और शक्ति का समर्थन प्राप्त है। नकारात्मक रूप में, लोक नीति में सरकारी अधिकारियों द्वारा किसी विशिष्ट मुद्दे पर कार्यवाही न करने का निर्णय शामिल है।

1.3 लोक नीति के प्रकार

अनेक सामाजिक वैज्ञानिकों एवं विद्वानों ने नीतिगत मुद्दों के प्रकारों पर विचार करने तथा मुद्दों और नीतियों के बीच तुलना करने का प्रयास किया है। नीतियाँ सरकारी कार्यों के घटकों में से एक हैं। इस भाग में हम वर्णन करेंगे कि नीतियों को किस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है। **लोवी** दृढ़ता से तर्क देते हैं कि नीतियों के तीन प्राथमिक प्रकार हैं: वितरणात्मक, पुनर्वितरणात्मक और नियामक। लोवी के अनुसार, सभी लोक नीतियाँ आपस में जुड़ी हुई हैं, उनमें व्यक्तिगत विकल्पों और सामाजिक अंतःक्रियाओं की खोज शामिल है।

i) वितरणात्मक नीतियाँ

वितरणात्मक नीतियाँ पूरे समाज के लिए नहीं होतीं, बल्कि समाज के कुछ विशिष्ट वर्गों के लिए होती हैं। इनमें मुख्य रूप से खाद्य राहत, जन कल्याण, स्वास्थ्य सेवाएँ और इसी प्रकार के अन्य कल्याणकारी कार्य शामिल हैं। वितरणात्मक नीतियों के कुछ अन्य उदाहरण हो सकते हैं –जैसे प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम, खाद्य सहायता, बालवाड़ी पोषण, टीकाकरण शिविर, सामाजिक बीमा, आदि।

ii) पुनर्वितरणात्मक नीतियाँ

पुनर्वितरण नीतियों का तात्पर्य उन नीतियों की पुनर्व्यवस्था से है जिनका उद्देश्य मौलिक सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन लाना है। यह हेरफेर या हेरफेर के माध्यम से सामाजिक वर्गों या जातीय समूहों के बीच संपत्ति, समृद्धि, व्यक्तिगत या नागरिक अधिकार या कुछ अन्य मूल्यवान वस्तु आवंटित करने का प्रयास करता है। पुनर्वितरण नीतियों के उदाहरणों में दिव्यांग व्यक्तियों का कल्याण, दिव्यांग व्यक्तियों के पुनर्वास, नागरिक अधिकार, सामाजिक अल्पसंख्यकों के लिए गरीब स्कूलों को सहायता, आदि शामिल हैं।

iii) विनियामक नीतियाँ

नियामक या नियंत्रक नीतियां व्यापार, व्यवसाय, सुरक्षा उपायों, जनोपयोगी सेवाओं, आदि के नियंत्रण से संबंधित हैं। वे विनियमित उद्योगों पर मानक लागू करके व्यक्ति के व्यवहार को बदलने का प्रयास करते हैं और इस प्रकार अक्सर अत्यधिक विवादास्पद स्थितियों को जन्म देते हैं। निजी हितों को प्राप्त करने के हित में उनका विरोध किया जाता है। इस तरह का विनियमन सरकार की ओर से काम करने वाले स्वतंत्र निकायों द्वारा किया जाता है। ऐसी संस्थाएं हैं – भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग (Competition Commission of India- CCI), बार काउंसिल ऑफ इंडिया (Bar Council of India-BCI), फार्मेसी काउंसिल ऑफ इंडिया (Pharmacy Council of India-PCI) और नर्सिंग काउंसिल ऑफ इंडिया (Nursing Council of India-NCI)। ये सभी अभिकरण नियामक अभिकरणों के उदाहरण हैं जो विभिन्न व्यवसायों के मानकों को बनाए रखने के लिए उनका संरक्षण करते हैं। इसी तरह, भारतीय रिजर्व बैंक (Reserve Bank of India-RBI), भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकरण (Telecom Regulatory

Authority of India-TRAI), भारतीय प्रतिभूति एवं विनियम बोर्ड (Securities and Exchange Board of India-SEBI) और इसी प्रकार के अन्य अभिकरण विनियामक गतिविधियों में व्यस्त हैं।

iv) संवैधानिक नीतिगत मुद्दे

बाद में, **लोवी** (1972) ने एक अन्य प्रकार के मुद्दे को जोड़ा, संवैधानिक नीतिगत मुद्दे, जिसमें संस्थाओं की स्थापना या पुनर्गठन शामिल है। इनमें से प्रत्येक नीतिगत मुद्दे शक्ति के विभिन्न कार्य क्षेत्रों का निर्माण करते हैं। ये नीतियाँ संविधान की प्रकृति, सामाजिक, आर्थिक कठिनाइयों और समाज की नैतिक माँगों को ध्यान में रखते हुए बनायी जाती हैं। ये नीतियाँ किसी वर्ग विशेष से संबंधित न होकर, सम्पूर्ण समाज के विकास से संबंधित होती हैं। शिक्षा और रोजगार के अवसरों का प्रावधान, आर्थिक स्थितीकरण, कानून और व्यवस्था का रखरखाव, आदि इसके प्रमाण हैं। हालाँकि, यहाँ यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि राजनीतिक नीतियों के कार्यों पर लोवी के विचारों की आलोचना बहुत सरल होने और पद्धति विज्ञान के रूप में शंका जांच की कमी को प्रदर्शित करने के रूप में की गयी है।

v) पूंजीकरण नीति

पूंजीकरण नीति के तहत, राज्यों और स्थानीय सरकारों को केंद्र सरकार से वित्तीय सहायता मिलती है और यदि आवश्यक हो, तो यह सहायता अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रों को भी प्रदान की जा सकती है। पूंजीकरण नीतियाँ प्रकृति में वितरणात्मक, पुनर्वितरणात्मक और नियामक, नीतियों से भिन्न होती हैं क्योंकि पूंजीकरण नीतियों के माध्यम से लोक–कल्याण का कोई प्रावधान नहीं किया गया है।

1.4 लोक नीति का महत्त्व

इस इकाई में अब तक हमने लोक नीति के अर्थ और प्रकारों को समझा है। अब हम लोक नीति के महत्त्व की चर्चा करेंगे। प्रत्येक प्रकार के संगठन में, चाहे वह सरकारी हो या गैर–सरकारी, प्रत्येक कार्यवाही से पहले नीति–निर्धारण आवश्यक है। यह सभी प्रकार के प्रबंधन के लिए एक शर्त है। नीति उस ढांचे को निर्धारित करती है जिसके भीतर संगठनात्मक लक्ष्यों को प्राप्त किया जाता है। किसी संगठन के उद्देश्य प्रायः अस्पष्ट और सामान्य होते हैं, जिन्हें नीतिगत लक्ष्यों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है और जो प्रशासन में गतिशीलता उत्पन्न करते हैं। नीति–निर्माण सरकार का एक महत्वपूर्ण कार्य है। लोक प्रशासन का सार नीति–निर्माण है। **एंडरसन** का तर्क है कि एक व्यक्ति लोक नीति का अध्ययन इसलिए करता है कि वह इस प्रक्रिया के सम्बन्ध में और अधिक जान सके, इस विषुद्ध विज्ञान के ज्ञान को भली भांति समझ सके। दोनों ही स्थिति में यह महत्वपूर्ण है। यह नीतिगत निर्णयों के कारणों और उनके परिणामस्वरूप होने वाली गतिविधियों की बेहतर समझ हासिल करने में सक्षम बनाता है।

हम लोक नीति को निर्भरता के रूप में या स्वतंत्रता के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। जब हम इसे निर्भरता के रूप में स्वीकारते हैं तो हमारा ध्यान पर्यावरणीय कारकों की ओर जाता है जो नीति के विषयों को आकार देने में मदद करते हैं। उदाहरण के लिए, सवाल उठता है कि पर्यावरण की रक्षा कैसे की जाए। दूसरी ओर, यदि हम लोक नीति को स्वतंत्रता के रूप में स्वीकारते हैं तो हमारा ध्यान तुरंत पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों की ओर जाता है। उदाहरण के लिए, आर्थिक नीति का श्रमिक वर्ग पर क्या विशिष्ट प्रभाव पड़ सकता है ? ऐसे प्रश्न

उठाने से हमें पर्यावरण एवं लोक नीति के बीच के संबंध को समझने में सहायता मिल सकती है और इस प्रकार हम नीति विश्लेषण के विकास में योगदान कर सकते हैं। इतना ही नहीं, लोक नीति के कारणों और परिणामों को समझने से हमें व्यावहारिक सामाजिक समस्याओं के समाधान खोजने के लिए इस वैज्ञानिक जानकारी या ज्ञान को लागू करने में मदद मिल सकती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि लोक नीति का अध्ययन किस प्रकार विशिष्ट लक्ष्यों पर पेशेवर सलाह में सहायक हो सकता है। जहाँ तक पेशेवरों का प्रश्न है, वे लोक नीति के बारे में अपनी समझ और ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात सरकारों या सार्वजनिक प्राधिकरणों को कुछ उपयोगी सुझाव और सलाह कैसे दे पाएंगे, कि नीति के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए इन नीतियों को किस प्रकार क्रियान्वित किया जा सकता है या किसी दी गई नीति के विकास में पर्यावरणीय कारक किस प्रकार सहायक हो सकते हैं। अंत में, यह एक तथ्यात्मक ज्ञान ही है जिसके द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र में होने वाली समस्याओं को इस प्रकार हल किया जा सकता है, जो ज्ञान या अध्ययन में स्वतः ही एक पूर्वापेक्षा है।

आज लोक प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र में नीति–विश्लेषण का बहुत महत्व है। नीति निर्माण, क्रियान्वयन और अनुश्रवण की सफलता आखिरकार पंचवर्षीय योजनाओं की शुरुआत के साथ उत्पन्न हुयी थी। जैसे–जैसे समय बीतता गया, एक पंचवर्षीय योजना ने दूसरी की जगह ले ली और निराशा छाने लगी। सामाजिक–आर्थिक विकास के उद्देश्य प्राप्त नहीं हुए। नीतियों के अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में विफलता का कारण खोजने के लिए प्रबंधन और प्रशासन पर ध्यान केंद्रित किया गया। बढ़ते असंतोष से निपटने के लिए 1975 में राष्ट्रीय आपातकाल लगाना चरमोत्कर्ष था। चारों ओर अराजकता के कारण नीतियों पर सवाल उठने लगे। अब क्रियान्वयन ही एकमात्र सवाल नहीं था। लोग यह मानने लगे कि नीतियां गलत हैं और सारा दोष प्रशासन का नहीं है। यह तर्क सबसे पहले अर्थशास्त्र विषय में शुरू हुआ। लोक प्रशासन के विद्वानों ने इस बात पर जोर दिया कि क्रियान्वयन में विफलताएं लोक नीति की अपर्याप्तता के कारण भी हो सकती हैं और इसलिये नीति विश्लेषण को भी लोक–प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र में शामिल करना चाहिए। नीति और प्रशासन को अलग करने की पुरानी अवधारणा को दिन–प्रतिदिन के अनुभव के प्रकाश में बनाए रखना कठिन होता जा रहा था। इस अंतर ने नीति निर्माण और कार्यान्वयन को दो अलग–अलग गतिविधियाँ बना दिया। नीति निर्माण को एक राजनीतिक गतिविधि और नीति कार्यान्वयन को एक प्रशासनिक गतिविधि माना जाता था। परन्तु यह अंतर तेजी से धुंधला हो गया और यह बताना आसान नहीं था कि नीति निर्माण कहाँ समाप्त होता है और नीति कार्यान्वयन कहाँ शुरू होता है। यह स्वीकार किया गया कि दोनों गतिविधियाँ एक–दूसरे को प्रभावित करती हैं और उन्हें एकीकृत तरीके से देखना आवश्यक है। अवधारणा में इस बदलाव के साथ, लोक प्रशासन के विद्वानों ने नीति–निर्माण और कार्यान्वयन पर नीति की परिकल्पना के प्रभाव की ओर अधिक ध्यान देना शुरू कर दिया। इस प्रकार नीति–विश्लेषण अध्ययन का एक महत्वपूर्ण केंद्र–बिन्दु बन गया। नीति–निर्माताओं ने भी इसमें बहुत रुचि ली है क्योंकि अंततः यह नीति को अधिक प्रभावी बनाने में सहायता करता है। अनेक विश्वविद्यालय और शोध संस्थान नीति–विश्लेषण में लगे हुए हैं।

1.5 लोक नीति की प्रकृति

लोक नीति को समझने के लिए इसकी प्रकृति को समझना अत्यंत आवश्यक है। नीति किसी भी प्रकार की हो सकती है जैसे सामान्य या विशिष्ट, सरल या जटिल, व्यापक या संकीर्ण, लिखित या अलिखित, सार्वजनिक या निजी, स्पष्ट या अंतर्निहित, विवेकाधीन या गैर–विवेकाधीन, विस्तृत और गुणात्मक या मात्रात्मक। यह एक कला है और इसलिए एक कौशल है। यह एक कला है क्योंकि इसमें सामाजिक समस्याओं की पहचान करने के लिए अंतर्दृष्टि और रचनात्मकता की आवश्यकता होती है और इन नीतियों के परिणामस्वरूप यह लोगों को अपने जीवन को बेहतर बनाने और अपनी समस्याओं को हल करने के लिए प्रेरित कर सकती है। लोक नीति को सरकार द्वारा कार्यवाही के दिशानिर्देश के रूप में अपनाया जाता है। इस दृष्टिकोण से सरकार की गतिविधियों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।

पहली, ऐसी गतिविधियाँ जो विशिष्ट नीतियों से जुड़ी हों, दूसरी, ऐसी गतिविधियाँ जो प्रकृति में सामान्य हों और तीसरी, ऐसी गतिविधियाँ जो अस्पष्ट और असंगत नीतियों पर आधारित हों। हालाँकि, व्यवहार में, सरकार शायद ही कभी अपनी गतिविधियों के लिए सिद्धांतों का एक सेट तैयार करती है। महत्वपूर्ण लोक नीतियों को प्रायः अधिक स्पष्ट रूप से निर्मित किया जाता है, विशेष तौर पर जहाँ कोई कानून, विनियमन या योजना और उसके समकक्ष शामिल होते हैं। भारत का सर्वोच्च न्यायालय अपने निर्णयों के माध्यम से संविधान के कुछ अनुच्छेदों की नयी व्याख्या कर सकता है, जिसे एक नई नीति का दर्जा दिया जा सकता है।

एक लोक नीति अपनी गतिविधियों के एक बड़े हिस्से को शामिल कर सकती है जो विकास नीति के अनुरूप हो। सामाजिक–आर्थिक विकास, समानता या स्वतंत्रता या आत्मनिर्भरता या इसी तरह के मार्गदर्शक कार्यवाही के सिद्धांत को विकास नीति या राष्ट्रीय लक्ष्य के रूप में अपनाया जा सकता है। एक लोक नीति संकीर्ण भी हो सकती है, जो किसी विशिष्ट गतिविधि से संबंधित हो, जैसे परिवार नियोजन। एक लोक नीति देश के सभी लोगों पर लागू हो सकती है या नागरिकों के केवल एक वर्ग पर लागू हो सकती है। इसके अतिरिक्त, सरकार के प्रत्येक स्तर पर (केंद्र, राज्य और स्थानीय स्तर पर) सामान्य या विशिष्ट नीतियाँ हो सकती हैं। इसके अलावा, 'भव्य नीतियाँ' भी होती हैं। ड्रोर के अनुसार, 'भव्य नीतियाँ' एक तरह की मास्टर नीति का रूप लेती है, जो ठोस स्पष्ट नीतियों से अलग होती है और जो मुख्य लक्ष्यों की स्थापना से जुड़ी होती है ताकि ठोस और विशिष्ट नीतियों के लिए दिशानिर्देश के रूप में कार्य किया जा सके।

लोक नीति में एक कानूनी गुण होता है, जिसे नागरिक कानून के रूप में स्वीकार करते हैं। उदाहरण के लिए, करों का भुगतान किया जाना चाहिए, अन्यथा किसी को जुर्माना भरना पड़ सकता है या जेल जाना पड़ सकता है। लोक नीतियों का यह कानूनी स्वरुप उन्हें निजी संगठनों से अलग करता है। एक उद्देश्यपूर्ण कार्यवाही के रूप में नीति की प्रकृति को संबंधित अवधारणाओं के साथ तुलना करके बेहतर ढंग से समझा जा सकता है।

1.6 लोक नीति एवं प्रशासन

लोक नीति और प्रशासन के बीच का रिश्ता बहुत गहरा है। लोक नीति प्रशासन के लिए दिशा–निर्देश प्रदान करती है और प्रशासन लोक नीति निर्णयों को लागू करता है। लोक नीति निर्णय लेती है और प्रशासन उन्हें

लागू करता है, योजना बनाता है, क्रियान्वित करता है और उनका मूल्यांकन करता है। इस संबंध से जनहित में कार्य होता है, सामाजिक समस्याओं का समाधान होता है, आर्थिक विकास होता है, और सामाजिक न्याय और समानता बढ़ती है। प्रारंभिक विद्वान नीति–निर्माण और लोक प्रशासन को एक दूसरे से असंबद्ध मानते थे। वे नीति–निर्माण कार्य को प्रशासन के दायरे से बाहर मानते थे। नीति और प्रशासन के बीच स्पष्ट अंतर करने का पहला श्रेय वुडरो विल्सन को जाता है। 1887 में प्रकाशित अपने निबंध "स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन" में उन्होंने राजनीति और प्रशासन के बीच अलगाव पर जोर दिया। उनका मानना था कि नीति–निर्माण एक राजनीतिक कार्य है जबकि प्रशासन केवल नीतियों को लागू करने से संबंधित है। उनका मानना था कि प्रशासनिक प्रश्न राजनीतिक नहीं होते हैं। विल्सन के विचारों को अमेरिकी विचारक 'गुडनाउ' ने आगे बढ़ाया। दोनों के विचारों का प्रभाव आने वाले कई दशकों तक बना रहा। इसी क्रम में 1926 में एल. डी. व्हाइट ने अपनी पुस्तक "इंट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन" के पहले संस्करण में प्रशासन और राजनीति के बीच पृथक्करण की पुरजोर वकालत की।

यह दृष्टिकोण अधिक समय तक नहीं चल सका। विद्वानों का मानना था कि प्रशासन और नीति को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। प्रशासन और राजनीति के बीच अन्योन्याश्रितता (Interdependence) पर अधिक जोर दिया गया। इस दृष्टिकोण के अग्रणी विचारकों में से एक विचारक लूथर गुलिक थे। एक अन्य महत्वपूर्ण विचारक 'एप्पलबी' का दृष्टिकोण भी इस मत से जुड़ा है कि राजनीति और प्रशासन एक जोड़ी की तरह हैं जिन्हें अलग नहीं किया जा सकता। एपलबी के शब्दों में, "प्रशासक निरंतर भविष्य के लिए नियम बनाते हैं और यह प्रशासक ही निरंतर निर्णय लेते हैं कि कानून क्या है, कार्यवाही के संदर्भ में इसका क्या अर्थ है और इस प्रक्रिया में आदान–प्रदान और भविष्य के आदान–प्रदान के संबंध में दोनों पक्षों यानी प्रशासन और नीति के अलग–अलग अधिकार क्या होंगे। प्रशासक एक अन्य तरीके से भी भविष्य की नीति–निर्माण में भाग लेते हैं। वे विधायिका के लिए प्रस्तावों और सुझावों का स्वरूप तय करते हैं। यह नीति–निर्माण का एक हिस्सा है। "संसदीय प्रणाली वाले देशों में कार्यपालिका और विधायिका एक दूसरे से अविभाज्य हैं अतः नीति–निर्माण और प्रशासन को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। ऐसे देशों में विधायिका के सदस्य कार्यपालिका के भी सदस्य होते हैं तथा सम्पूर्ण कार्यपालिका विधायिका के प्रति उत्तरदायी होती है। ऐसी स्थिति में नीति–निर्माण एवं प्रशासन के बीच एक अटूट सम्बन्ध बन जाता है।

यह कहना सही है कि नीति निर्माण मुख्य रूप से विधायिका का कार्य है, क्योंकि नीति का आधार और प्रारूप विधान द्वारा निर्धारित और तय किया जाता है। परन्तु इस पूरी प्रक्रिया में प्रशासन का सहयोग महत्वपूर्ण है। वास्तविक आंकड़े प्रशासन के माध्यम से ही प्राप्त होते हैं, जिनके आधार पर नीतियां बनायी जाती हैं। दूसरा पहलु यह है कि एक बार व्यापक नीति बन जाने के बाद विधायिका के लिए उन नीतियों को आवश्यक विस्तार देना या कार्य के दौरान आने वाली विभिन्न समस्याओं के संदर्भ में उन्हें पुनः परिभाषित करना संभव नहीं होता। अंततः यह कार्य प्रशासन को ही करना होता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि नीति का स्रोत विधायिका है, परन्तु आगे के चरणों का निर्माण प्रशासन के ही विभिन्न वर्गों द्वारा किया जाता है। भारत जैसे देशों में नीति निर्माण के

कार्य में प्रशासन की भूमिका निर्णायक होती जा रही है। पूरी नीति प्रशासन द्वारा ही तैयार की जाती है, जिसे विभागीय मंत्री के माध्यम से सदन में प्रस्तावित किया जाता है। इस प्रकार नीति निर्माण में प्रशासन की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो गयी है।

1.7 सारांश

लोक नीति अध्ययन और व्यवहार का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। यह किसी सामाजिक व्यवस्था को अतीत से भविष्य की ओर ले जाने के लिए एक महत्वपूर्ण तंत्र है। उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण के वर्तमान युग में शासन की भूमिका बदल गई है। वस्तुओं और सेवाओं को उपलब्ध कराना शासन का एक महत्वपूर्ण कार्य है। परन्तु आधुनिक परिस्थितियों में, चूंकि शासन समाज की एक संस्था है, इसलिए इसका कार्य समाज के विकास के लिए निरंतर होना चाहिए, इसकी क्षमता नीतियों के निर्माण और कार्यान्वयन में निहित है। लोक नीति मात्र सरकारी गतिविधियों के कारणों और परिणामों का विवरण और व्याख्या नहीं है, बल्कि इसमें लोक नीति की प्रकृति की शक्तियों के बारे में वैज्ञानिक ज्ञान का विकास भी शामिल है। ये नीतियाँ सामाजिक परिस्थितियों के परिवर्तन में बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव छोड़ती हैं। यह राज्य में व्यवस्था स्थापित करने के लिए लोगों को एक साथ संगठित भी करती है। इस इकाई के अंर्तगत हमने लोक नीति के अर्थ, प्रकृति, महत्व एवं लोक नीति के विभिन्न प्रकारों की चर्चा की। लोक नीति एवं प्रशासन के संबंधों को समझाने का भी प्रयास किया गया।

1.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. लोक नीति के अर्थ, प्रकृति एवं महत्त्व को स्पष्ट कीजिये।
2. लोक नीति के विभिन्न प्रकारों की चर्चा कीजिये।
3. लोक नीति एवं प्रशासन के संबंधों पर प्रकाश डालिए।

बहुविकल्पीय प्रश्नः

1. नीति विज्ञान की अवधारणा को सर्व प्रथम किसने व्यक्त किया था ?

a. हेरॉल्ड लॉसवेल
b. लोवी
c. कार्ल जे. फ्रेडरिक
d. डेविड ईस्टन

2. “सरकार जो कुछ भी करना चाहती है या नहीं करना चाहती है लोक नीति कहलाती है।” यह परिभाषा निम्न में से किस विद्वान ने दी है ?

a. हेरॉल्ड लॉसवेल

b. थॉमस आर.डाई

c. कार्ल जे. फ्रेडरिक

d. रिचर्ड रोज

3. लोवी के अनुसार नीतियों के तीन प्राथमिक प्रकार निम्न मेंसे कौन हैं?

a. वितरणात्मक, पुनर्वितरणात्मक एवं संवैधानिक नीति

b. तात्विक, वितरणात्मक एवं पुनर्वितरणात्मक

c. सारगत, संवैधानिक एवं पूंजीकरण नीति

d. वितरणात्मक, पुनर्वितरणात्मक और नियामक

बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर:

1. (a)2. (b) 3. (d)

1.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. शर्मा रश्मि, 2021. प्रशासन एवं लोकनीति : अवधारणा एवं सिद्धांत, साहित्य भवन प्रकाशन आगरा।
2. सिन्हा मनोज, प्रशासन एवं लोकनीति, ओरिएंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद।
3. माहेश्वरी एस. आर. एवं अवस्थी ए., लोक प्रशासन लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
4. सप्रू आर. के., लोक नीति : सूत्रीकरण, कार्यान्वयन तथा मूल्यांकन, जवाहर पब्लिशर्स ऐंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली।
5. साहनी, प्रदीप, 1979. पब्लिक पालिसी स्कोप एंड लॉजिक, प्रेटिस हॉल, यू.एस.ए.।
6. ईस्टन, डी. (1957), ऐन एप्रोच टू द अनलिसिस ऑफ पॉलिटिकल सिस्टम्स, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस यू.के.

इकाई – 2 – नीति चक्र : नीति–निर्माण की बाधाएँ

2.0 उद्देश्य

2.1 परिचय

2.2 नीति–निर्माण

2.3 नीति–निर्माण का महत्त्व

2.4 नीति–क्रियान्वयन

2.5 नीति–मूल्यांकन

2.6 नीति–निर्माण में आने वाली बाधाएँ

2.7 सारांश

2.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप,

- लोक नीति के निर्धारण की चर्चा कर सकेंगे।
- नीति–निर्माण के महत्त्व को स्पष्ट कर पाएंगे।
- नीति–क्रियान्वयन एवं नीति–मूल्यांकन पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- नीति–निर्माण में आने वाले व्यवधानों को जान पाएंगे।

2.1 परिचय

इस खंड की पहली इकाई में हमने लोक नीति के अर्थ और प्रकृति को समझा। इस इकाई के अंतर्गत हम नीति चक्र पर चर्चा करेंगे। इस इकाई का उद्देश्य नीति निर्माण और क्रियान्वयन की पूरी प्रक्रिया पर ध्यान केंद्रित करना और नीतियों के उचित परिणाम देने में विफलता के कारणों को समझना है। नीति–निर्माण मूल रूप से

शक्ति की अभिव्यक्ति है। शक्ति को अन्य लोगों के व्यवहार में किसी प्रकार का परिवर्तन लाने की क्षमता के रूप में वर्णित किया जाता है। लोक नीति के संदर्भ में, शक्ति को नीतिगत निर्णय लेने के लिए सार्वजनिक महत्व के पदों पर बैठे व्यक्ति या लोगों के समूह की क्षमता के रूप में परिभाषित किया जाता है। नीति–निर्माण विभिन्न व्यक्तियों और समूहों द्वारा पूरा किया जाता है। इस प्रक्रिया में निर्णयों के जटिल अंतर्संबंध शामिल होते हैं जो शक्तिशाली व्यक्तियों और समूहों के प्रभाव में स्थापित होते हैं।

2.2 नीति–निर्माण

नीति–निर्माण का निर्णय लेने की प्रक्रिया से गहरा संबंध है। यह निर्णय लेने जैसा नहीं है। निर्णय लेना नीति निर्माण से जुड़ा हो सकता है, परन्तु यह आवश्यक नहीं कि एक निर्णय नीति का रूप धारण कर ले। निर्णय लेने की प्रक्रिया में प्रायः किसी समस्या की पहचान करना, विकल्पों का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करना और कार्यवाही के लिए विकल्प चुनना शामिल होता है। सामान्य तौर पर, प्रशासक अपने दिन–प्रतिदिन के कार्यों के दौरान प्रचलित नीतिगत ढांचे के भीतर निर्णय लेते हैं। इस प्रकार लिए गए नीतिगत निर्णय प्रशासनिक कार्यवाही पर निर्देशित प्रतीत होते हैं।

एंडरसन कहते हैं कि "नीतिगत निर्णय वे होते हैं जो सार्वजनिक अधिकारी सार्वजनिक नीति की कार्यवाहियों को दिशा और विषयवस्तु प्रदान करने के लिए लेते हैं।" इनमें कार्यकारी आदेश जारी करने, प्रशासनिक नियमों में संशोधन करने या कानून की महत्वपूर्ण व्याख्या करने से संबंधित निर्णय शामिल हो सकते हैं।

वास्तविक नीति निर्माण के बारे में बात करने से पहले, हमें यह स्पष्ट होना चाहिए कि नीति निर्माण में मुद्दे /समस्याएं किस प्रकार विभिन्न चरणों से गुजरकर नीति का रूप लेती हैं। लोकतंत्र में समस्याओं की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करने के अनेक तरीके हैं। संसद और राज्य विधानसभाओं के सदस्य जनता के प्रतिनिधि के रूप में इन मुद्दों को संसद और विधानसभाओं में उठाते हैं। ये मुद्दे मुख्य रूप से उन क्षेत्रों से संबंधित होते हैं जिन पर सरकार या तो उचित कार्यवाही करने में विफल रही है या सरकार की किसी कार्यवाही ने समाज में कुछ समस्याएं पैदा की हैं। समाज में संगठित दबाव समूह भी होते हैं जो सरकार से किसी विशिष्ट दिशा में कार्यवाही करने की मांग कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, व्यापार और उद्योग के फेडरेशन ऑफ इंडियन चौंबर्स ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री जैसे संगठन या केंद्रीय सरकारी कर्मचारियों के संगठन या ट्रेड यूनियन भी सरकार की नीतियों को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं। सामाजिक हित के आंदोलन भी विशिष्ट मुद्दों पर सरकार का ध्यान आकर्षित कर सकते हैं।

गैर–सरकारी संगठन भी किसी विशिष्ट समस्या की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जन जागरूकता बढ़ाने और समाज में बदलाव लाने में जनसंचार माध्यमों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सरकारें भी अपनी विचारधारा और प्रतिबद्धता के कारण नीतियां बनाती हैं। संविधान में वर्णित समाज के आदर्श भी सरकार की नीतियों को प्रभावित करते हैं। विपक्षी दल सरकार को किसी विशेष नीति को अपनाने के लिए मजबूर करने के लिए विभिन्न सार्वजनिक दलों और संसदीय मंचों का उपयोग करते हैं। एक लोकतांत्रिक

समाज में, सरकार नीतियों को तैयार करते समय न केवल अपनी विचारधारा को ध्यान में रखती है, बल्कि समाज के विभिन्न संगठनों और समूहों, राजनीतिक और सामाजिक समूहों की मांगों को भी ध्यान में रखती है।

समस्या को नीतिगत एजेंडे में शामिल करने के बाद ही सरकार उस समस्या के समाधान के लिए उद्देश्य और लक्ष्य से सम्बंधित निर्णयों की ओर अग्रसर होती है। समाधान के निम्न तीन चरण होते हैं–

1. **नीतियों के लक्ष्यों की व्यावहारिकता**–पहले चरण में लक्ष्य और उद्देश्य निर्धारित किए जाते हैं। इसमें एक परिप्रेक्ष्य तय किया जाता है, जिसमें लक्ष्य निर्धारित किए जा सकें। लक्ष्य निर्धारित करते समय यह भी ध्यान में रखा जाता है कि उन्हें व्यवहार में लाना किस हद तक संभव है। नीति के लक्ष्य यथार्थवादी होने चाहिए, ताकि नीतिगत लक्ष्यों को आसानी से प्राप्त किया जा सके, क्योंकि ऐसी नीतियां जिन्हें लागू करना कठिन होता है, नीतिगत लक्ष्यों को प्राप्त करना भी एक कठिन कार्य होता है।

2. **रणनीति** – दूसरे स्तर पर नीतियों को लागू करने के लिए रणनीति तैयार की जाती है। उदाहरण के लिए, निर्धनता के उन्मूलन के लिए विभिन्न प्रकार की रणनीतियां, बाजार मूल्य से कम पर भोजन और आवास उपलब्ध कराना, ऐसी परिसंपत्तियां उपलब्ध कराना जिससे अतिरिक्त आय हो सके और उन्हें गरीबी रेखा से ऊपर उठाया जा सके। नीतिगत लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कई रणनीतियां एक साथ भी अपनायी जा सकती हैं।

3. **कार्यान्वयन** – इस स्तर पर नीतियों के कार्यान्वयन की विधि निर्धारित की जाती है। कुछ रणनीतियों के लिए उपलब्ध प्रशासनिक ढांचे की आवश्यकता हो सकती है। नीतिगत लक्ष्यों के कार्यान्वयन में अधिकारीतंत्र और गैर–सरकारी संगठनों की भूमिका भी निर्धारित की जानी चाहिए।

2.3 नीति–निर्माण का महत्त्व

लोक नीति समाज को आकार देने और व्यक्तियों के जीवन को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह स्वास्थ्य सेवा और शिक्षा से लेकर पर्यावरण और सामाजिक कल्याण तक, सभी को प्रभावित करती है। एक विकासशील राष्ट्र को विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इनसे निपटने के लिए लोक नीति का उपयोग किया जाता है। प्रत्येक प्रकार के संगठन में, चाहे वह सरकारी हो या गैर–सरकारी, कार्यवाही से पहले नीति बनाना आवश्यक है। नीति वह ढांचा तय करती है जिसके भीतर संगठनात्मक लक्ष्यों को प्राप्त किया जाता है। नीति–निर्माण शासन का एक महत्वपूर्ण कार्य है। लोक नीतियां सरकारी निकायों और सरकारी अधिकारियों द्वारा विकसित की जाती हैं। हालांकि, गैर–सरकारी लोग और एजेंसियां भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नीति निर्माण प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं। प्रभावी लोक नीति संसाधनों का न्यायसंगत आवंटन सुनिश्चित करती है, सामाजिक न्याय को बढ़ावा देती है और सामाजिक चुनौतियों का समाधान करती है। लोक नीति का अध्ययन करने से लोगों के जीवन को सकारात्मक रूप से प्रभावित करने वाली नीतियों को विकसित करने और लागू करने में सहायता मिलती है। लोक नीति के महत्व को कम करके नहीं आंका जा सकता, क्योंकि यह अधिक समावेशी और समृद्ध समाज बनाने के लिए उत्प्रेरक है।

2.4 नीति–क्रियान्वयन

नीति चक्र का अगला चरण नीति–क्रियान्वयन है। नीति–निर्माण जितना आवश्यक है उतना ही आवश्यक उसका क्रियान्वयन है। विकास कार्यों में लोक प्रशासन की सफलता का आकलन केवल नीतियों के क्रियान्वयन के संदर्भ में ही किया जा सकता है। सरकार की सफलता के लिए नीति क्रियान्वयन अत्यंत महत्वपूर्ण है। चाहे राजनीतिक व्यवस्था कितनी भी अच्छी हो, लक्ष्य कितने भी महान हों, संगठनात्मक व्यवस्था कितनी भी सुदृढ़ हो, कोई भी नीति तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक उसका कार्यान्वयन नीति पारित करने वालों के उद्देश्यों से जुड़ा न हो। क्रियान्वयन के अभाव में नीति–निर्माण की कोई प्रासंगिकता नहीं रह जाती। क्रियान्वयन पर पूर्णतः निर्भर कोई भी नीति एक व्यापक प्रक्रिया होती है जिसमें नीति से संबंधित विभागों, मंत्रालयों, संगठनों, निगमों आदि का पूरा तंत्र शामिल होता है। पहले चरण में जो 'नीति दस्तावेज' तैयार किया जाता है उसका गहन अध्ययन किया जाता है। क्रियान्वयन से संबंधित एजेंसियां नीति से संबंधित विभिन्न मुद्दों पर स्पष्टीकरण की मांग करती हैं। इस चरण में सभी प्रकार के अस्पष्ट बिंदुओं पर चर्चा की जाती है तथा एक निश्चित समझ बनायी जाती है ताकि भविष्य में किसी प्रकार के संदेह या भ्रम की गुंजाइश न रहे।

दूसरे चरण में नीति को क्षेत्रवार या समूहवार विभाजित करने का काम किया जाता है। इसके तहत लक्षित क्षेत्र या समूह पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। उपलब्ध संसाधनों के संदर्भ में यह तय किया जाता है कि किन क्षेत्रों और किन समूहों में नीति को पहले लागू किया जाएगा। इसके तहत यह भी देखा जाता है कि किस क्षेत्र में नीति की सर्वाधिक आवश्यकता है और किस क्षेत्र में अपेक्षाकृत कम है। इसी आधार पर संसाधनों का भी आवंटन किया जाता है।

तीसरे चरण में नीति के क्रियान्वयन से प्रभावित होने वाले वर्गों और क्षेत्रों से आवश्यक जानकारी और डेटा एकत्र किया जाता है। ये सूचनाएं और आंकड़े नीति के प्रभाव और उसके मूल्यांकन में बहुत सहायक होते हैं। इसके अलावा यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि नीतियों का न केवल सकारात्मक प्रभाव पड़ता है बल्कि कुछ वर्गों पर उनका नकारात्मक प्रभाव भी पड़ता है। इस चरण में इन नकारात्मक प्रभावों को लक्षित करने का काम भी किया जाता है। चौथे चरण में इन तीनों चरणों के आलोक में अर्थात् सभी तरह की सूचनाओं, आंकड़ों और जमीनी हकीकत के संदर्भ में नीति क्रियान्वयन के लिए एक मानदंड या मानक बनाया जाता है जो भविष्य के लिए राह आसान बनाता है।

संविधान में नीति निर्माण के लिए विधायिका को आधिकारिक अभिकरण माना गया है। इसी प्रकार नीति–क्रियान्वयन के लिए आधिकारिक अभिकरण कार्यपालिका है। व्यवहार में कार्यपालिका का काम प्रशासनिक तंत्र ही करता है। संवैधानिक स्थिति यह है कि विधायिका नीति का निर्माण करती है और कार्यपालिका उसे क्रियान्वित करती है। परन्तु संसदीय व्यवस्था के संदर्भ में यह विभाजन व्यावहारिक नहीं है, क्योंकि संविधान में ही कार्यपालिका को विधायिका के प्रति जवाबदेह माना गया है। यही नहीं, इस व्यवस्था में विधायिका के सदस्य ही कार्यपालिका के सदस्य होते हैं। इसलिए नीति क्रियान्वयन में विधायिका की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भूमिका होती है। जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधि मात्र नीति बनाने से संतुष्ट नहीं होते, बल्कि नीति के क्रियान्वयन के प्रति भी काफी

सजग होते हैं। विधायिका के पास ऐसे कई साधन होते हैं, जिसके माध्यम से वह कार्यपालिका को नीतियों को प्रभावी ढंग से और तीव्रता से क्रियान्वित करने के लिए बाध्य कर सकती है।

न्यायपालिका भी अप्रत्यक्ष रूप से ही सही, नीति क्रियान्वयन में अपनी भूमिका निभाती है। न्यायपालिका को संवैधानिक नीतियों की व्याख्या करने का अधिकार है और इसे अंतिम माना जाता है। यदि कोई नीति ठीक से लागू नहीं होती, तो अदालत उसके क्रियान्वयन के लिए आवश्यक आदेश दे सकती है। वर्तमान युग न्यायिक सक्रियता का युग है। न्यायिक सक्रियता के इस युग में नीति क्रियान्वयन के क्षेत्र में न्यायपालिका की भूमिका लगातार बढ़ रही है। ऐसे मामलों और नीतियों की संख्या लगातार बढ़ रही है जिनका क्रियान्वयन या तो अदालत के आदेश से शुरू हो रहा है या आवश्यकतानुसार गति पकड़ रहा है।

नीति क्रियान्वयन मूलतः सरकार का दायित्व है। परन्तु इसमें गैर–सरकारी अभिकरणों की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। इसमें विभिन्न प्रकार के गैर सरकारी संगठन, दबाव समूह, मानवाधिकार संगठन, विभिन्न प्रकार के नागरिक संगठन आदि शामिल हैं। आर्थिक उदारीकरण के इस दौर में जैसे–जैसे राज्य की भूमिका सीमित होती जा रही है, वैसे–वैसे नौति क्रियान्वयन के क्षेत्र में इन गैर–सरकारी अभिकरणों की भूमिका बढ़ती जा रही है। ये अभिकरण जनता को लोक नीतियों के बारे में जागरूक करने के साथ–साथ उनके उचित क्रियान्वयन के लिए भी आवश्यक संघर्ष कर रहे हैं। विभिन्न तरह के सामाजिक, आर्थिक कार्यक्रमों में इनकी सक्रिय भागीदारी हो रही है।

2.5 नीति–मूल्यांकन

नीति चक्र का अन्तिम एवं अत्यंत महत्त्वपूर्ण चरण नीति–मूल्यांकन है। मूल्यांकन, नीति के लागू होने के बाद होता है। यह नीति या कार्यक्रम के गुण या सामाजिक उपयोगिता से संबंधित है। मूल्यांकन अनुश्रवण अर्थात निगरानी नहीं है। हालाँकि, मूल्यांकन के लिए निगरानी एक पूर्वापेक्षा है। अनुश्रवण लोक नीतियों के बारे में तथ्यात्मक आधार स्थापित करने से संबंधित है। मूल रूप से, यह नियंत्रण और शक्ति के प्रयोग से संबंधित है। अनुश्रवण इस सवाल का जवाब देता है कि "क्या हुआ, कैसे हुआ और क्यों हुआ?" इसके विपरीत, मूल्यांकन इस सवाल का जवाब देता है कि "इससे क्या प्रभाव पड़ता है?" मूल्यांकन पूर्वव्यापी है और कार्य पूरा हो जाने के बाद किया जाता है। यह वास्तविक जीवन की स्थितियों पर नीति के प्रभाव को 'निर्धारित करने का प्रयास' करने से संबंधित है।

नीति विश्लेषण में मूल्यांकन अनेक कार्य निष्पादित करता है। सर्वप्रथम, यह नीति निष्पादन के बारे में विश्वसनीय जानकारी प्रदान करता है। मूल्यांकन का प्राथमिक उद्देश्य समाज पर नीतियों के प्रभाव की माप करना है। यह बताता है कि किस सीमा तक विशिष्ट लक्ष्य प्राप्त किए गए हैं (उदाहरण के लिए, जन्म के समय जीवन प्रत्याशा में वृद्धि)। इससे हमें उस परिमाण को समझने में सहायता मिलती है जिस परिमाण तक नीतिगत मुद्दों का समाधान किया गया है।

दूसरे, मूल्यांकन लक्ष्यों और उद्देश्यों को उचित रूप से परिभाषित करके नीतियों को नियंत्रित करने वाले मूल्यों को स्पष्ट करने में मदद करता है। चूंकि जिस समस्या का निराकरण किया जा रहा है उसके संबंध में नीति

लक्ष्यों और उद्देश्यों की उपयुक्तता पर सवाल उठाया जा सकता है, इसलिए मूल्यांकन स्वयं लक्ष्यों और उद्देश्यों का मूल्य–निर्धारण करने के लिए एक तंत्र प्रदान करता है। तीसरे, मूल्यांकन के परिणामस्वरूप नीतिगत समस्याओं को फिर से तैयार करने का प्रयास हो सकता है। यह नए उद्देश्यों और संभावित समाधानों के उद्भव में भी योगदान दे सकता है। नीति कार्यान्वयन के दौरान, नीतिगत क्रियाओं (Actions) को या तो उन नयी स्थितियों के अनुरूप फिर से तैयार किया जाता है जिनका मूल्यांकन किया गया है या उन्हें पूरी तरह से समाप्त कर दिया जाता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि सूचना का उपयोग यह अनुमान लगाने के लिए किया जा सकता है कि क्या आवश्यकताएं पूरी हुई हैं या क्या नीतिगत क्रियाओं ने समस्याओं का समाधान करने की तुलना में अधिक समस्याएँ पैदा की हैं। मूल्यांकन मुख्य रूप से कुछ निर्धारित उद्देश्यों के संदर्भ में नीतिगत परिणामों का विश्लेषण करने का एक प्रयास है। यह नीतियों की सामाजिक उपयोगिता निर्धारित करता है।

इस प्रकार, किसी नीति का मूल्यांकन करने के लिए अनेक मापदंड हैं और किसी नीति को समुदाय के सभी वर्गों के हितों को पूरा करने में सक्षम होना चाहिए, चाहे उसका मूल्यांकन किसी भी मापदंड पर किया जाए। कोई नीति तभी प्रभावी हो सकती है जब उससे संबंधित मुद्दे पर आम सहमति हो। प्रायः नीति के उद्देश्यों और लक्ष्यों को लेकर विवाद उत्पन्न होते हैं। यदि ऐसी आम सहमति विद्यमान नहीं है, तो नीति का बहुत सावधानी से मूल्यांकन किया जाना चाहिए ताकि बाद की नीतियों में समान समस्यायें न उत्पन्न हों और स्थायी समाधान प्राप्त किया जा सके।

2.6 नीति–निर्माण में आने वाली बाधाएँ

नीति–निर्माण में अनेक अवरोध हैं जो नीति प्रक्रिया को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते हैं। वित्तीय संसाधनों की अपर्याप्तता भी एक समस्या है जो नीति प्रक्रिया के सुचारू संचालन को प्रभावित करती है। समय पर कार्यक्रमों को लागू करने में विफलता आदि के कारण व्यय में वृद्धि स्थिति को और खराब करती है। नीति–निर्माण में शामिल कर्मियों के बीच अपर्याप्त दक्षता और कौशल एक और अड़चन है जिसे उचित प्रशिक्षण और शिक्षा द्वारा संबोधित किया जा सकता है।राजनीतिक हस्तक्षेप, जनता के समर्थन की कमी, सामाजिक रूप से जागरूक समूहों की गैर–भागीदारी आदि कुछ अन्य बाधाएं हैं। इसके अतिरिक्त, दोषपूर्ण नीति ढांचा, नीति–शिक्षा की कमी, नीतियों की अपर्याप्त निगरानी और मूल्यांकन आदि को भी बाधाओं की सूची में जोड़ा जा सकता है।

नीति–निर्माण के अध्ययन का एक आयाम यह समझने से संबंधित है कि एक नागरिक, एक व्यक्ति या व्यक्तिगत रूप में, निर्णयकर्ताओं को कैसे प्रभावित करता है। एक लोकतांत्रिक सरकार में, लोगों को अपने भाग्य का निर्माता कहा जाता है। ऐसी स्थिति में, लोकतंत्र प्रतिनिधि और उत्तरदायी सरकार का स्रोत बन जाता है। प्रतिनिधि लोकतंत्र में, यह माना जाता है कि सत्ता आम लोगों से उत्पन्न होती है। प्रतिनिधित्व में, व्यक्तियों से विधायिका को प्रतिनिधित्व का रूप निहित है। विधायिका के माध्यम से जनता के प्रतिनिधि कानून बनाते हैं और बहुमत के वोट से नीतिगत निर्णय लेते हैं। साथ ही, कुछ पदाधिकारियों के आवधिक चुनाव की प्रक्रिया में भाग लेने की प्रथा यह सुनिश्चित करती है कि जिन लोगों का प्रतिनिधित्त्व किया जाता है उनके हितों का ध्यान दिया जा रहा है।

लोकतंत्र में लोग उन उम्मीदवारों को वोट देकर कानून बनाने और नीति निर्धारण की प्रक्रिया आरंभ करते हैं जिनके विचारों और मतों से वे अवगत होते हैं। फिर भी, व्यवहार में नीति निर्माण में नागरिकों की भागीदारी नगण्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि बहुत से लोग अपने वोट के अधिकार का प्रयोग नहीं करते या दलीय राजनीति में भाग नहीं लेते। ये केवल एक इकाई के रूप में सक्रिय होकर नागरिक शायद ही कभी एक मजबूत राजनीतिक ताकत बन सकते हैं। यह भी देखा गया है कि राजनीति में शामिल होने वाले अधिकांश लोग किसी राजनीतिक संगठन में शामिल होने के बजाय व्यक्तिगत आधार पर ऐसा करते हैं। वे न तो संगठित हितों से जुड़े होते हैं और न ही सार्वजनिक मामलों में सक्रिय रुचि लेते हैं। यहां तक कि जब वे वोट देते हैं, तब भी वे शायद ही कभी नीतिगत झुकाव या प्राथमिकताओं से प्रभावित होते हैं। भारत में केवल एक अल्पसंख्यक समूह है जिसके सदस्य राज्य, जिला और स्थानीय स्तर पर विधायी, कार्यकारी और न्यायिक पदों पर हैं। बड़ी संख्या में लोग सार्वजनिक सेवा में लगे हुए हैं, लेकिन जनता या सार्वजनिक नीतियों को प्रभावित करने वालों का प्रतिशत बहुत छोटा है। इसलिए, यह आसानी से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राजनीति अपेक्षाकृत कम लोगों को आकर्षित करती है।

व्यक्तिगत रूप से नागरिकों द्वारा व्यक्त जनमत विचारों की तीव्रता या घनत्व को प्रतिबिंबित नहीं करता है। यह नीति परिवर्तन के लिए मुख्य आधार के रूप में काम नहीं करता है। अनेक नागरिकों में नीति–निर्माण की विषय–वस्तु और तकनीकों को समझने के लिए आवश्यक विशेषज्ञता का अभाव होता है। प्रायः वे नहीं जानते कि सबसे अधिक प्रभाव दर्शाने के लिए अधिकारियों को किस तरह के नीतिगत मुद्दों पर विचार करना चाहिए। व्यक्तिगत रूप से नागरिक शायद ही कभी मात्र कार्य करके एक सार्थक या मजबूत ताकत के रूप में उभरते हैं। दूसरी ओर, ऐसे अनेक नागरिक हैं जो विभिन्न और परस्पर विरोधी हितों और मूल्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं। लोक नीतियों को प्रभावित करने के उद्देश्य से, सामूहिक कार्यवाही आम नागरिक के लिए व्यक्तिगत कार्यवाही की तुलना में अधिक प्रभावी मानी जाती है। यदि बड़ी संख्या में नागरिक एक सामान्य उद्देश्य या हित के लिए संगठित नहीं हैं, तो उनके संदेशों और नीतिगत मुद्दों के व्यापक प्रसारण और प्रसार की संभावनाएं बाधित होंगी। व्यक्तिगत रूप से किसी नागरिक के लिए, हित समूह संचार या वैचारिक प्रसारण का एक महत्वपूर्ण चैनल या माध्यम होता है। हित समूह या दबाव समूह जनमत के प्रभाव को बढ़ाने के महत्वपूर्ण साधन होते हैं।

राजनीतिक दल जनमत की अभिव्यक्ति को बढ़ाने के एक अन्य साधन के रूप में कार्य करते हैं। दबाव समूहों की भांति, वे नागरिकों और नीति–निर्माताओं के बीच एक पुल का काम करते हैं। जिन राजनीतिक मंचों पर चुनाव लड़े जाते हैं, वे किसी राजनितिक दल के नेतृत्व के आधार के रूप में कार्य करते हैं। इस प्रकार, राजनीतिक दलों को सरकार और लोक नीतियों पर लोकप्रिय नियंत्रण स्थापित करने के लिए महत्वपूर्ण अभिकर्ता माना जाता है। वे महत्वपूर्ण मुद्दों को उजागर करने और समाज के लिए मूल्य–आधारित लक्ष्य निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारतीय राजनीतिक दल मुख्य रूप से मध्यस्थता करने वाले संगठन होते हैं: वे नीतिगत पदों या सामाजिक परिस्थितियों के प्रति संवेदनशील स्थितियों को बढ़ावा देने के बजाय सार्वजनिक महत्व के पदों को प्राप्त करने के लिए प्रतिबद्ध होते हैं। अर्थव्यवस्था, उद्योग, निर्धनता और बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रम,

श्रम और व्यापार पर केंद्रित सरकारी विनियम आदि जैसे विभिन्न मुद्दों पर प्रायः विभिन्न दलों के बीच संघर्ष और टकराव होते रहते हैं। इसके अलावा, यह भी एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि प्रधानमंत्री का कार्यपालिका पर नियंत्रण तो बना रहता है, परन्तु वह स्वयं विधायिका पर निर्भर रहता है। परिणामस्वरूप, जब भी नीति–निर्माण की प्रक्रिया में सत्तारूढ़ दल के भीतर अनुशासन और मजबूती सुनिश्चित करने का प्रयास किया जाता है, तो दल की स्थिति कमजोर हो जाती है। संक्षेप में, यद्यपि सैद्धांतिक दृष्टिकोण से राजनीतिक दल नीति–निर्माण प्रक्रिया में निर्णायक भूमिका निभाते हैं, परन्तु वे जन आकांक्षाओं के साथ पूर्ण तालमेल नहीं दिखा पाते हैं। वे महत्वपूर्ण संस्थाएँ हैं, परन्तु लोक नीति पर उनके प्रभाव को अत्यधिक सकारात्मक तरीके से प्रस्तुत करना उचित नहीं होगा।

2.7 सारांश

नीति–निर्माण एक अत्यंत जटिल विश्लेषणात्मक और राजनीतिक प्रक्रिया है, जो निरंतर गतिशील रहती है और जिसकी सीमाएं पूर्णतः अनिश्चित होती हैं। नीति–निर्माण में लोगों के प्रतिनिधित्व का कार्य भारतीय संविधान द्वारा संसद के लिए कानून पारित करके सुनिश्चित किया गया है। हालाँकि कुछ संस्थाएँ किसी भी रूप में नीति–निर्माण में अपनी भागीदारी नहीं दिखाती हैं, परन्तु वे परियोजना के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, जिन्हें नीति–निर्माण में बाधाओं के रूप में उल्लेख किया गया है। इस इकाई से हमें यह ज्ञात हुआ कि किस प्रकार से नीति–निर्धारण, क्रियान्वयन और मूल्यांकन किया जाता है।

2.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. नीति–निर्माण को परिभाषित करते हुये इस कव महत्त्व को समझाइये।
2. नीति चक्र से आप क्या समझते हैं ?
3. नीति–निर्माण में आने वाली बाधाओं की चर्चा कीजिये।

बहुविकल्पीय प्रश्नः

1. "नीतिगत निर्णय वे होते हैं जो सार्वजनिक अधिकारी लोक नीति की कार्यवाहियों को दिशा और विषयवस्तु प्रदान करने के लिए लेते हैं। "नीति–निर्माण की यह परिभाषा निम्न में से किस विद्वान ने दी है ?

a. हेरॉल्ड लॉसवेल

b. एंडरसन

c. डेविड ईस्टन

d. कार्ल जे. फ्रेडरिक

उत्तरः(b)

2.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. शर्मा रश्मि, 2021. प्रशासन एवं लोकनीति : अवधारणा एवं सिद्धांत, साहित्य भवन प्रकाशन आगरा।
2. सिन्हा मनोज, प्रशासन एवं लोकनीति, ओरिएंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद।
3. माहेश्वरी एस. आर. एवं अवस्थी ए., लोक प्रशासन लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
4. सप्रू आर. के., लोक नीति : सूत्रीकरण, कार्यान्वयन तथा मूल्यांकन, जवाहर पब्लिशर्स ऐंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली।
5. साहनी, प्रदीप, 1979. पब्लिक पालिसी स्कोप एंड लॉजिक, प्रेटिस हॉल, यू.एस.ए.।
6. ईस्टन, डी. (1957), ऐन एप्रोच टू द अनलिसिस ऑफ पॉलिटिकल सिस्टम्स, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस यू.के.

इकाई – 3 – लोक नीति – निर्माण का माहौल

3.0 उद्देश्य

3.1 परिचय

3.2 राज्य की प्रकृति

3.3 शासन व्यवस्था की प्रकृति

3.3.1 शासन की संरचना

3.3.2 लोकतान्त्रिक व्यवस्था

3.3.3 एकदलीय व्यवस्था

3.3.4 मिश्रित शासन व्यवस्था

3.4 नीति विश्लेषणकी प्रणाली

3.5 नीति–निर्धारण में सरकारी प्राधिकरणों की भूमिका

3.6 नीति–निर्धारण में गैर–सरकारी प्राधिकरणों की भूमिका

3.7 नीति–निर्धारण में संस्कृति, सदाचार एवं मूल्यों की भूमिका

3.8 सारांश

3.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के पश्चात आप,

- लोक नीति निर्माण के माहौल को समझ सकेंगे।
- राज्य एवं शासन व्यवस्था की प्रकृति की चर्चा कर सकेंगे।
- नीति–निर्धारण में सरकारी एवं गैर–सरकारी प्राधिकरणों की भूमिका को स्पष्ट कर पाएंगे।
- नीति–निर्धारण में संस्कृति, सदाचार एवं मूल्यों की भूमिका को समझने में सक्षम हो जायेंगे।

3.1 परिचय

नीति–निर्माण एक सतत प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया तब तक समाप्त नहीं होती जब तक कि नीति स्वीकृत या अपनायी नहीं जाती। **एंडरसन** का मानना है कि " नीति तब तक निर्देशित होती है जब तक वह अस्तित्व में नहीं आ जाती, और तब तक निर्देशित होती रहती है जब तक वह अस्तित्व में नहीं आ जाती या निर्मित नहीं हो जाती। "उद्देश्य, लक्ष्य, नीति और योजना शब्द अक्सर एक ही अर्थ के साथ एक दूसरे के स्थान पर उपयोग किए जाते हैं। वास्तविक विशिष्टता के कारण उनके बीच अंतर है। लक्ष्य और उद्देश्य व्यापक मांग से संबंधित हैं। इस इच्छा को प्राप्त करने के लिए नीतियां और उद्देश्य तैयार किए जाते हैं। इस अर्थ में लक्ष्य और नीतियां मूल्य प्रस्ताव हैं जिसे प्राप्त करने का संकल्प लिया गया है। इस प्रकार निर्धनता–उन्मूलन को एक लक्ष्य के रूप में माना जा सकता है जिसे भारत सरकार आगे बढ़ाना चाहती है। इस आधार पर, ग्रामीण विकास, शहरी विकास और औद्योगिक विकास की नीतियां तैयार की गयी हैं जो इस व्यापक सार्वजनिक लक्ष्य को प्राप्त करने का साधन हैं। इस संदर्भ में, नीतियों को व्यापक साधन माना जा सकता है। प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत हम लोक नीति निर्माण के माहौल की चर्चा करेंगे।

3.2 राज्य की प्रकृति

राज्य एक प्रकार का मानवीय संगठन है, जो प्राचीन काल से अस्तित्व में है। विभिन्न राजनीतिक वैज्ञानिकों ने राज्य को अलग–अलग तरीके से परिभाषित किया है। परिणामस्वरूप, राज्य की सबसे उचित परिभाषा के बारे में उनके बीच कोई एकमत नहीं है। राज्य की सबसे उपयुक्त परिभाषा पर कोई अकादमिक सहमति नहीं है। राज्य की शास्त्रीय परिभाषा है–"किसी विशेष भौगोलिक क्षेत्र के भीतर एक परिभाषित इकाई जो उस भौगोलिक क्षेत्र के निवासियों पर संप्रभु अधिकार रखती है।" एक और आम तौर पर प्रयोग की जाने वाली परिभाषा **मैक्स वेबर** की है जो राज्य को एक केंद्रीकृत सरकार के साथ एक अनिवार्य राजनीतिक संगठन के रूप में वर्णित करती है एवं एक निश्चित क्षेत्र के भीतर बल के वैध उपयोग का एकाधिकार बनाए रखती है।

राज्य की प्रकृति को समझने के लिए इसके तत्वों, उद्देश्यों और कार्यों पर ध्यान देना आवश्यक है।

1. राज्य के तत्व

राज्य का सबसे महत्वपूर्ण तत्व उसकी जनसंख्या है। जनसंख्या के बिना राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती। राज्य का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व एक निश्चित भूभाग होता है, जिसमें उसकी सीमाएँ निर्धारित होती हैं। तीसरा तत्व सरकार है। राज्य के सुचारू संचालन के लिए एक प्रभावी सरकार का होना आवश्यक है, जो नियमों और कानूनों को लागू करती है। राज्य का अंतिम एवं महत्वपूर्ण तत्व उसकी संप्रभुता है, जिसका अर्थ है कि वह किसी भी अन्य शक्ति से स्वतंत्र होकर अपने निर्णय ले सकता है।

2. राज्य का उद्देश्य

राज्य का उद्देश्य मात्र कानून लागू करना और व्यवस्था बनाए रखना ही नहीं है, बल्कि नागरिकों की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक उन्नति सुनिश्चित करना भी है। यह एक न्यायपूर्ण समाज की स्थापना और समग्र विकास के लिए कार्य करता है।

3. राज्य की भूमिका

राज्य का मुख्य कार्य सुरक्षा प्रदान करना है, ताकि नागरिकों की स्वतंत्रता और अधिकारों की रक्षा की जा सके। यह सामाजिक कल्याण लिए योजनाएँ और नीतियाँ बनाता है ताकि समाज के कमजोर वर्गों की सहायता की जा सके। राज्य न्याय और समानता को बढ़ावा देता है, जिससे समतावादी समाज का निर्माण होता है।

प्रत्येक संस्था को अपने कार्यों के अनुसार नियम, विनियम और कानून बनाने का अधिकार है। जब हम अन्य संस्थाओं द्वारा बनाए गए कानूनों की तुलना राज्य द्वारा बनाए गए कानूनों से करते हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्य के कानून अपरिहार्य हैं। वे शासकों और शासितों दोनों पर एक साथ लागू होते हैं। उनमें सार्वभौमिकता का एक मजबूत तत्व है क्योंकि वे सभी या कुछ विशिष्ट क्षेत्रों या समूहों पर लागू होते हैं। राज्य का कानून प्रत्येक समाज के क्षेत्र में एक अटूट ढांचा है। राज्य की विशिष्ट विशेषताओं को देखने के बाद, इसे एक ऐसी संस्था के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो सरकार द्वारा बनाए गए कानूनों के माध्यम से बाध्यकारी शक्तियों के साथ एक क्षेत्रीय रूप से परिभाषित समुदाय के भीतर सामाजिक व्यवस्था की सार्वभौमिक बाहरी स्थितियों के तहत काम करती है। इस प्रकार, राज्य की प्रकृति सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक कार्यों का एक समूह है, जो नागरिकों की बेहतरी और विकास के लिए समर्पित है।

किसी राज्य में कानून और नीतियां संबंधित राजनीतिक व्यवस्था में प्रचलित शासन प्रणाली के अनुरूप बनायी जाती हैं, जो समग्र रूप से सामाजिक व्यवस्था से लिया गया अन्योन्यक्रिया का एक पैटर्न है। प्रासंगिक विन्यास के संपूर्ण ढांचे में राज्य की भूमिका और नीति निर्धारण को स्पष्ट रूप से समझने के लिए, विभिन्न प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाओं में शासन प्रणाली पर चर्चा करना बेहतर होगा।

3.3 शासन व्यवस्था की प्रकृति

प्रत्येक प्रणाली की अपनी सीमाएँ, परंपराएँ, मूल्य, लक्ष्य, किसी विशेष पहलू के प्रति प्रतिबद्धता और शासन का तरीका होता है। शासन व्यवस्था से आशय उस प्रणाली से है जिसके तहत किसी देश या समाज का प्रबंधन और संचालन किया जाता है। इसकी प्रकृति को निम्नलिखित विशेषताओं से समझा जा सकता है:

3.3.1 शासन की संरचना

कार्यकारी शाखा : कार्यकारी शाखा का मुख्य कार्य कानूनों को लागू करना और शासन को प्रभावी ढंग से चलाना है। इसमें राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और अन्य मंत्रिपरिषद शामिल हैं।

विधायी शाखा : विधायी शाखा का कार्य कानून बनाना और देश के लिए नीतियाँ निर्धारित करना है। संसद या विधानसभा इसका प्रतिनिधित्व करती है।

न्यायपालिका शाखा : न्यायिक शाखा का मुख्य कार्य कानून की व्याख्या करना और न्याय प्रदान करना है। यह शाखा सुनिश्चित करती है कि देश के कानूनों का उल्लंघन न हो और सभी को न्याय मिले।

3.3.2 लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था

लोकतंत्र में शासन व्यवस्था जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों के माध्यम से चलती है। यह जनप्रतिनिधि जनता की इच्छाओं और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था में प्रत्येक नागरिक को समान अधिकार और अवसर प्रदान किए जाते हैं। कानून की दृष्टि में सभी नागरिक समान हैं। नागरिकों को अभिव्यक्ति, धर्म और जीवन की स्वतंत्रता दी जाती है। यह स्वतंत्रता व्यक्तिगत विकास और समाज की समृद्धि के लिए आवश्यक है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में सरकार जनता के प्रति जवाबदेह होती है। नागरिक सरकार के निर्णयों की आलोचना कर सकते हैं और उसे जवाबदेह बना सकते हैं।

लोकतंत्र एक ऐसी शासन प्रणाली है जिसमें अंतिम राजनीतिक शक्ति जनता के हाथों में होती है। एक राजनीतिक प्रणाली के रूप में लोकतंत्र का तात्पर्य लोगों की संप्रभुता से है। यह इस धारणा पर काम करता है कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है; वह अपने दैनिक जीवन में नैतिक और व्यावहारिक निर्णय ले सकता है। इसका अर्थ यह है कि जब मनुष्य सामाजिक संस्थाओं का निर्माण करने और मानवीय संबंधों को व्यवस्थित करने का प्रयास करता है, तो सत्य की निरंतर खोज होती है। लोकतंत्र के लिए अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा के साथ बहुमत के शासन पर आधारित नीति–निर्माण की प्रणाली की आवश्यकता होती है। शासन की एक लोकतांत्रिक प्रणाली को प्रभावी रूप से भाषण देने, प्रेस, धर्म, संगठित होने, राय व्यक्त करने और कानून के समक्ष समानता के अधिकार की गारंटी देनी चाहिए। राजनीति, राजनीतिक दल और राजनेता ऐसे उत्प्रेरक अभिकर्ता हैं जो लोकतंत्र को संचालन योग्य बनाते हैं।

लोकतंत्र का अर्थ सिर्फ सरकारी निर्णय लेना नहीं है। 20वीं सदी में लोकतंत्र का अर्थ मात्र सभी को वोट देने का अधिकार देना और चुने हुए प्रतिनिधियों से कुछ विशिष्ट सामाजिक और आर्थिक नीतियों को लागू करने की अपेक्षा करना है। मैक्सी के शब्दों में, '20वीं सदी में लोकतंत्र को जिस तरह से समझा गया, वह महज एक

राजनीतिक फॉर्मूला, शासन की एक पद्धति और एक सामाजिक व्यवस्था से कहीं अधिक है। यह एक ऐसी जीवन शैली की खोज है जिसमें मनुष्य की स्वैच्छिक और उन्मुक्त बुद्धि और गतिविधि को कम से कम दबाव के साथ सामंजस्य में लाया जा सकता है और यह माना जाता है कि ऐसी जीवन शैली सभी मानव जाति के लिए सबसे अच्छी है, एक ऐसी शैली जो मानव जाति के भविष्य और विश्व की प्रकृति के साथ सर्वाधिक सुसंगत है।

3.3.3 एकदलीय व्यवस्था

इस प्रकार की शासन व्यवस्था में सत्ता एक व्यक्ति या छोटे समूह के हाथों में केंद्रित होती है, और जन प्रतिनिधित्व का अभाव होता है। तानाशाही में नागरिकों को अपनी राय प्रकट करने या सरकार की आलोचना करने की स्वतंत्रता नहीं होती। शासन नागरिकों के जीवन के लगभग प्रत्येक पहलू को नियंत्रित करता है और असहमति को दबाने के लिए कठोर उपाय करता है। एकदलीय शासन उन व्यक्तियों या संगठनों की गतिविधियों को बर्दाश्त नहीं करता है जो राज्य के लक्ष्यों पर निर्देशित नहीं हैं। एकदलीय तानाशाह, खुफिया पुलिस, सभी संचार माध्यमों द्वारा प्रसारित प्रचार, खुली बहस व आलोचना को कुचलकर तथा बड़े पैमाने पर आतंक की कार्यनीति के माध्यम से स्वयं को सत्ता में बनाए रखते हैं।

अनिवार्य रूप से निरंकुश, एक दलीय व्यवस्था अपने शासकों द्वारा मनमाने ढंग से राजनीतिक शक्ति के प्रयोग पर आधारित होती है। आम लोगों की स्वतंत्रता को दबाने और विपक्ष के अस्तित्व के लिए कोई जगह न छोड़ने का हर संभव प्रयास किया जाता है। इसका एक वैचारिक आधार होता है, जो धार्मिक, कट्टरपंथी या सत्तावादी हो सकता है। एक दलीय शासन, अपनी संपूर्णता में, एक स्थापित नेता के माध्यम से एक ही राजनीतिक दल के प्रभुत्व पर आधारित होता है। कुछ विद्वानों द्वारा यह दावा किया गया है कि साम्यवादी राज्य एक दलीय राज्य और सरकारें हैं क्योंकि उसमें राज्य को नियंत्रित करने वाली स्थापित विचारधारा, एक ही पार्टी का प्रभुत्व, केंद्रीकृत नीति–निर्माण, अन्य दलों के अस्तित्व को नकारना, आदि गुण पाए जाते हैं।

3.3.4 मिश्रित शासन व्यवस्था

कई देशों में शासन व्यवस्था मिश्रित होती है, जिसमें लोकतंत्र और तानाशाही के कुछ तत्व मिलकर काम करते हैं। यह एक ऐसी शासन प्रणाली है, जिसमें विभिन्न राजनीतिक या प्रशासनिक प्रणालियों के तत्वों का मिश्रण होता है। इसमें कुछ अधिकार जनता को होते हैं, लेकिन कुछ निर्णय सरकार के द्वारा नियंत्रित किए जाते हैं। मिश्रित शासन व्यवस्था यह व्यवस्था समाज की विविध आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए लचीलापन और समायोजन की अनुमति देती है। इसमें लोकतंत्र, संघवाद, समाजवाद, राजतंत्र आदि के विभिन्न तत्वों का सम्मिलित रूप होता है। उदाहरण के लिए, कुछ देशों में लोकतांत्रिक चुनाव होते हैं लेकिन उनके पास एक संवैधानिक राजतंत्र भी होता है, जैसे कि यूनाइटेड किंगडम। इसके अंतर्गत परंपरागत या सांस्कृतिक कानूनों के साथ–साथ संवैधानिक ढांचे का भी सम्मिलन होता है। जैसे कि कुछ देशों में पारंपरिक शासन प्रणाली और आधुनिक राज्य तंत्र एक साथ चलते हैं। मिश्रित शासन व्यवस्था उन देशों में विशेष रूप से उपयोगी होती है,

जहां जनसंख्या विविधतापूर्ण है या राजनीतिक परंपराएं जटिल हैं, क्योंकि यह विभिन्न प्रकार के शासन और अधिकार स्रोतों के बीच संतुलन स्थापित करती है।

शासन व्यवस्था की प्रकृति, अपनाए जा रहे सिद्धांतों और शासन चलाने के तरीके पर निर्भर करती है। चाहे वह लोकतांत्रिक हो, तानाशाही हो या मिश्रित, प्रत्येक प्रणाली का अपना महत्व और भूमिका होती है, जो समाज के विकास और स्थायित्व में योगदान देती है।

3.4 नीति विश्लेषण की प्रणाली

नीति–निर्माण की प्रक्रिया को समझने के लिए, विश्लेषण की प्रणाली को समझना अत्यंत उपयोगी है। राजनीतिक प्रणाली के अपने विश्लेषण में, **डेविड ईस्टन** कहते हैं: राजनीतिक प्रणाली समाज का वह हिस्सा है जो "मूल्यों के आधिकारिक आबंटन" से संबंधित है। निवेश को वातावरण में भौतिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक निर्गत के रूप में देखा जाता है। वे राजनीतिक प्रणाली में मांग और समर्थन दोनों रूपों में प्राप्त किए जाते हैं। मांगें पर्यावरण के कुछ पहलू को बदलने के लिए राजनीतिक प्रणाली पर व्यक्तियों या समूहों द्वारा किए गए दावे हैं। मांगें तब उत्पन्न होती हैं जब व्यक्ति या समूह पर्यावरणीय स्थितियों में प्रतिक्रिया स्वरूप लोकनीति को प्रभावित करने के लिए कार्य करते हैं। पर्यावरण को राजनीतिक व्यवस्था की "सीमाओं से बाहर" किसी भी स्थिति या घटना के रूप में परिभाषित किया जाता है। इसमें वे नियम, कानून और रीति–रिवाज शामिल हैं जो राजनीतिक समुदायों या अधिकारियों की स्थापना के लिए आधार प्रदान करते हैं। यह तब होता है जब लोग या समूह किसी निर्णय /कानून) को स्वीकार करते हैं।

राजनीतिक व्यवस्था के मूल में वे संस्थाएँ होती हैं जो नीति–निर्माण का काम करती हैं। इनमें मुख्य प्रशासक, विधायक, न्यायाधीश और अधिकारी शामिल हैं। व्यवस्था के रूप में वे निवेशों को उत्पादन में बदलते हैं। फिर उत्पादन राजनीतिक व्यवस्था का परिणाम बन जाता है। अतः ये उत्पादन राजनीतिक प्रणाली के प्रधिकत मूल्य विधान होते हैं तथा ये विधान लोक नीति या नीतियों का निर्माण करते हैं। प्रणाली सिद्धांत लोक नीति को राजनीतिक व्यवस्था का एक उत्पाद बताता है। "पुनः सत्यापन" की अवधारणा बताती है कि लोक नीतियाँ पर्यावरण पर प्रभाव को कम कर सकती हैं, उसमें मांग पैदा कर सकती हैं और राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति को प्रभावित कर सकती हैं। नीतिगत निर्गत नयी मांग या समर्थन पैदा कर सकते हैं और व्यवस्था के लिए पुराने समर्थन या मांग को वापस ले सकते हैं। प्रतिपुष्टि लिए उचित मांगों को उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

3.5 नीति–निर्धारण में सरकारी प्राधिकरणों की भूमिका

भारत एक संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य है, जिसकी सरकार संसदीय प्रणाली पर आधारित है। नीति निर्माण में विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसके अलावा, कुछ गैर–सरकारी संगठन भी पूरी प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारतीय शासन प्रणाली निश्चित रूप से देश के संविधान के आलोक में योजनाकारों द्वारा निर्धारित कुछ बुनियादी उद्देश्यों के अनुरूप है। मोटे तौर पर, इन उद्देश्यों के संदर्भ में नीतियां बनायी गयी हैं और बनायी जा रही हैं। इनमें से कुछ उद्देश्य हैं –

निर्धनता—उन्मूलन, निरक्षरता उन्मूलन, आय और धन के वितरण में असमानताओं को कम करना, सामाजिक न्याय के उपायों पर पहल, आर्थिक शक्ति का न्यायसंगत वितरण, कमजोर वर्गों को सहायता, अवसरों की समानता में वृद्धि, मुद्रास्फीति के दबावों का प्रतिरोध, औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि, जनशक्ति संसाधनों का पूर्ण उपयोग, सभी के लिए आवास, वस्त्र और स्वास्थ्य की मूलभूत आवश्यकताओं में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना, आर्थिक और तकनीकी आत्मनिर्भरता प्राप्त करना, कृषि उत्पादन में वृद्धि, परिवहन प्रणाली का विकास करना, जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने वाली नीतियों को प्रोत्साहित करना, विकास प्रक्रिया में जनता के सभी वर्गों की सक्रिय भागीदारी को प्रोत्साहित करना, आदि। ये कुछ मूलभूत उद्देश्य हैं जिन्हें हमारी विकास नीतियां हासिल करने का प्रयास कर रही हैं। व्यवस्था का मुख्य जोर आत्मनिर्भरता, आर्थिक प्रगति, औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण और सामाजिक न्याय पर रहा है। इन मुख्य उद्देश्यों के संदर्भ में नीतियों का निर्धारण व क्रियान्वयन होता रहा है।

भारत एक लोकतांत्रिक देश है, जहां संसदीय शासन प्रणाली है। सरकार के तीन महत्वपूर्ण अंग हैं— कार्यपालिका (राजनीतिक और स्थायी), विधायिका और न्यायपालिका। लोकतांत्रिक व्यवस्था में वास्तविक राजनीतिक शक्ति सरकार के कार्यकारी अंग के पास होती है। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि हम कार्यपालिका—केंद्रित युग में रह रहे हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि नीति निर्माण के उद्देश्य से आवश्यक मुद्दों पर कानून बनाना विधानमंडलों का कार्य है, जिसके लिए कार्यपालिका जवाबदेह है, लेकिन व्यवहार में चीजें काफी अलग हैं। जिन मुद्दों पर नीतियां बनायी जानी हैं, उन पर कार्यपालिका द्वारा चर्चा और निर्णय लिया जाता है और फिर औपचारिक मंजूरी के लिए विधायिकाओं के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। विधायिकाओं में अपनी ताकत के आधार पर, कार्यपालिका नीतिगत मुद्दों को सार्वजनिक नीतियों के रूप में विधायिकाओं के समक्ष प्रस्तुत करने में सक्षम होती है। अधिकांश कम विकसित और कुछ विकासशील देशों में, विकसित देशों की तुलना में कार्यपालिका नीति निर्माण में अधिक प्रभाव डालती है। सम्पूर्णनीति निर्माण प्रक्रिया में, स्थायी कार्यपालिका यानी नौकरशाही भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

संसदीय शासन प्रणाली में विधायिका की स्थिति सामान्य तौर पर कार्यपालिका से बेहतर दिखायी देती है। विधायिका द्वारा किसी मुद्दे पर निर्णय लिए जाने के बाद ही कार्यपालिका उस पर कार्यवाही करने की स्थिति में होती है। विधायिका नीतियों के माध्यम से राज्य की इच्छा का निर्माण और अभिव्यक्ति करती है। कार्यपालिका तभी तक सत्ता में रह सकती है, जब तक उसे विधायिका का विश्वास प्राप्त है। हालांकि, वास्तविक स्थिति अलग है। कार्यपालिका को विधायिका के अधिकांश सदस्यों का समर्थन प्राप्त रहता है।

यद्यपि कानून बनाना विधानमंडल का कार्य है, परन्तु न्यायालय और न्यायिक अंग भी कानून बनाते हैं। जब भी कोई नीति किसी मुद्दे पर मौन होती है, या अन्य नीतियों के अनुरूप नहीं होती है, तो न्यायपालिका ही संविधान के मूल आधार के आलोक में उसका अर्थ स्पष्ट करती है। न्यायालय समानता और न्याय के मूल्यों से निर्देशित होते हैं। उनके निर्णय विभिन्न नीतियों के मामलों में सरकारी संस्थाओं को औचित्य प्रदान करते हैं। न्यायिक समीक्षा की शक्ति नीति निर्माण में न्यायपालिका की भूमिका को संदर्भित करती है। संवैधानिक विवादों की स्थिति में, भारतीय न्यायपालिका ने संविधान द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग किया है। भारत सरकार कार्यपालिका,

विधायिका और न्यायिक संस्थाओं से मिलकर बनी प्रणाली के माध्यम से नीतियों का निर्धारण करती है। किसी भी प्रणाली के समग्र वातावरण में संस्थाओं की भूमिका का महत्वपूर्ण स्थान होता है। नीतियां, विशेष रूप से लोकतांत्रिक देशों में, सत्तारूढ़ दल के मूल उद्देश्यों और विचारधारा पर दृढ़ रहकर बनायी जाती हैं।

3.6 नीति–निर्धारण में गैर–सरकारी प्राधिकरणों की भूमिका

नीति निर्धारण में गैर–सरकारी प्राधिकरणों की भूमिका महत्वपूर्ण होती जा रही है, क्योंकि सरकार के साथ–साथ अन्य संस्थाएं भी समाज के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करने में सक्रिय भूमिका निभाती हैं। ये संस्थाएं समाज के विभिन्न वर्गों की आवाज, विशेषज्ञता, और संसाधनों को नीति निर्माण की प्रक्रिया में लाती हैं। गैर–सरकारी संगठन (NGO) और विचार–विमर्श संस्थान (think tanks) अक्सर विभिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञता रखते हैं, जैसे कि शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण, मानवाधिकार आदि। वे गहन अनुसंधान और डेटा के आधार पर नीतियों को बेहतर बनाने के लिए सुझाव देते हैं। इनका विश्लेषण और रिपोर्टें सरकार को सूचित और साक्ष्य–आधारित निर्णय लेने में मदद करती हैं। ये जनता के विभिन्न वर्गों, विशेष रूप से वंचित और हाशिए पर रहने वाले लोगों के हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे उनकी समस्याओं को सरकार तक पहुंचाते हैं और यह सुनिश्चित करते हैं कि नीतियों में उनकी जरूरतों को ध्यान में रखा जाए। इसके अतिरिक्त ये संगठन जागरूकता अभियानों और जन–संवाद के माध्यम से लोगों को नीति निर्धारण की प्रक्रियाओं में सक्रिय भागीदारी के लिए प्रेरित करते हैं।

कुछ गैर–सरकारी संस्थाएं अपने वित्तीय और मानव संसाधनों के माध्यम से नीति निर्माण की प्रक्रिया में सीधे योगदान देती हैं। उदाहरण के लिए, निजी कंपनियां और चौरिटेबल फाउंडेशन स्वास्थ्य और शिक्षा क्षेत्र में बड़े पैमाने पर निवेश करके सरकार की नीतियों को लागू करने में मदद करती हैं। गैर–सरकारी प्राधिकरण अक्सर नए विचार और नवाचार लाते हैं जो पारंपरिक सरकारी नीतियों से परे होते हैं। वे विकासशील परियोजनाओं, पायलट योजनाओं और सामाजिक नवाचारों के माध्यम से नीतियों को अधिक प्रभावी और टिकाऊ बनाने के तरीकों का सुझाव देते हैं। इस प्रकार गैर–सरकारी प्राधिकरण नीति निर्धारण में सहायक, मार्गदर्शक और नियंत्रक के रूप में कार्य करते हैं। वे सरकार को सुझाव देते हैं, नीतियों की निगरानी करते हैं, और जनहित में नीतिगत सुधार लाने में योगदान करते हैं।

3.7 नीति–निर्धारण में संस्कृति, सदाचार एवं मूल्यों की भूमिका

नीति–निर्माण एक ऐसी प्रक्रिया है जो किसी भी समाज या राष्ट्र की दिशा और दशा निर्धारित करती है। इसमें न केवल राजनीतिक और आर्थिक पहलुओं को ध्यान में रखा जाता है, बल्कि संस्कृति, नैतिकता और मूल्यों का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। संस्कृति हमारे जीवन का आधार है और नैतिकता हमारी दिनचर्या का अभिन्न अंग है। इन दोनों के संयोजन से एक मजबूत और मूल्य आधारित नीति निर्माण संभव होता है।

संस्कृति की भूमिका

संस्कृति हमारे जीवन की मूल धारा है, जो हमारे आचरण और सोच को प्रभावित करती है।यह किसी निर्दिष्ट समाज के सीखे हुए, सामाजिक रूप से प्रसारित व्यवहार और विशेषताओं का संयोजन है। किसी सामाजिक समूह की संस्कृति औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा, भाषा, ज्ञान, लोक रीति–रिवाजों, विश्वासों,

परंपराओं और संस्थाओं के माध्यम से विकसित और कायम रहती है। नीति–निर्माण में संस्कृति की भूमिका यह सुनिश्चित करती है कि विकास और प्रगति की योजनाओं में मानवता, करुणा और सह–अस्तित्व के सिद्धांत निहित हों। स्वस्थ और विकसित समाज के निर्माण के लिए नीति निर्माण में संस्कृति का समावेश आवश्यक है।

सदाचार की भूमिका

सदाचार वह आचरण है जो व्यक्ति और समाज को नैतिकता और ईमानदारी की दिशा में ले जाता है। मनुष्य की बुनियादी गरिमा को बनाए रखना, संविधान की रक्षा करना, राज्य संरचना को बनाए रखना, लोकतांत्रिक भावना को बनाए रखना, निष्पक्ष और स्वच्छ कामकाज, मुद्दों पर सैद्धांतिक रुख, तुच्छ, संकीर्ण पक्षपातपूर्ण या व्यक्तिगत हितों से चिपके रहने के बजाय "ज्वलंत मुद्दों और मांगों" पर नीतियां तय करना आदि कुछ ऐसे बिंदु हैं जिन्हें "नैतिक मुद्दे" या "सदाचार" कहा जा सकता है और जिन्हें नीति–निर्माताओं द्वारा अनदेखा नहीं किया जा सकता है, विशेषकर भारत जैसे लोकतांत्रिक व्यवस्था में। किसी भी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह द्वारा सार्वजनिक पद पर अनैतिक होने का कोई भी प्रयास गंभीर आलोचना का सामना करेगा।जब नीति–निर्माण सदाचार के आधार पर किया जाता है, तो यह न केवल विकासात्मक होता है, बल्कि टिकाऊ और समतापूर्ण भी होता है। सदाचार नीति–निर्माण में पारदर्शिता, नैतिकता और अखंडता को प्रोत्साहित करता है, जिससे नीति और शासन में जनता का विश्वास बरकरार रहता है।

मूल्यों की भूमिका

मूल्य व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के जीवन का अभिन्न अंग हैं। वे हमें सिखाते हैं कि कौन सा कार्य सही है और कौन सा गलत। किसी व्यक्ति या समूह द्वारा धारण किए गए मूल्यों को मूल्य प्रणाली के रूप में जाना जाता है।समय के साथ, एक समाज में, क्या सही है, किसी कार्य को कैसे किया जाना चाहिए, कब किया जाना चाहिए, आदि सामाजिक मूल्यों के रूप में जाने जाते हैं, जिन्हें समाज में विचारकों के एक समूह द्वारा धारण किया जाता है और जिन्हें उस समूह के बाहर के समाज में भी मान्यता प्राप्त है। नीति–निर्माण में मूल्य इसलिए आवश्यक हैं क्योंकि वे दीर्घकालिक परिणामों को ध्यान में रखते हुए समाज के हर वर्ग के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते हैं। मूल्य आधारित नीति के बिना कोई भी समाज अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकता। एक व्यवस्था में विद्यमान मूल्यों का सम्मान किया जाना चाहिए किन्तु उपयोगितावादी, उद्देश्यपूर्ण, वस्तुनिष्ठ और नैतिक तरीके से जिसमें मूल्यों और तथ्यों को नीति–निर्धारण के समय शामिल किया गया हो।

संस्कृति, सदाचार और मूल्य किसी भी नीति के मूल आधार हैं। जब नीति निर्माण में इनका समुचित समावेश होता है तो यह समाज और राष्ट्र को नैतिक, प्रगतिशील और सशक्त बनाता है।

3.8 सारांश

प्रत्येक व्यवस्था एक निश्चित वातावरण में रहते हुए कार्य करती है, और इसका एक संदर्भगत विन्यास होता है, जिसके अनुसार नीतिगत मुद्दों तथा समस्याओं को कार्यवाही के लिए अनुकूलित, क्रियान्वित एवं मूल्यांकित किया जाता है। राज्य की प्रकृति, शासन का स्वरूप, विभिन्न सरकारी तथा गैर–सरकारी प्राधिकरणों–भूमिका, संस्कृति, सदाचार, तथा मूल्य आदि नीतियों के निर्धारण और क्रियान्वयन पर प्रभाव पड़ता है। दूसरे शब्दों में, ये सभी परिवर्तनशील शक्तियां, नीति–निर्धारण के संदर्भगत विन्यास के घटक हैं। इस इकाई में चर्चा मुख्य रूप से इन्ही पहलुओं पर केंद्रित है।

3.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. नीति–निर्माण के सन्दर्भ में राज्य एवं शासन व्यवस्था की प्रकृति को स्पष्ट कीजिए।
2. भारत में नीति–निर्माण में शामिल सरकारी और गैर–सरकारी प्राधिकरणों की भूमिका का वर्णन कीजिए।
3. एकदलीय व्यवस्था के अन्तर्गत नीति–निर्माण प्रक्रिया में अपनायी जाने वाली गतिविधियों की श्रृंखला की चर्चा कीजिये।

बहुविकल्पीय प्रश्नः

1. "नीति तब तक निर्देशित होती है जब तक वह अस्तित्व में नहीं आ जाती, और तब तक निर्देशित होती रहती है जब तक वह अस्तित्व में नहीं आ जाती या निर्मित नहीं हो जाती। "नीति–निर्माण के सन्दर्भ में निम्न में से किस विद्वान ने ऐसा कहा है ?

a. हेरॉल्ड लॉसवेल

b. डेविड ईस्टन

c. एंडरसन

d. ओपनहीमर

2. राज्य के चार आवश्यक तत्व कौन–से हैं ?

a. जनसंख्या, भूभाग, सरकार एवं संप्रभुता

b. सरकार, संप्रभुता, जनसंख्या एवं लोकतन्त्र

c. जनसंख्या, भूभाग, सरकार एवं संविधान

d. संप्रभुता, सरकार, जनसंख्या,एवं न्यायपालिका

उत्तरः1.(c), 2. (a)

3.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. मैकाइवर, आर. एम, 1966. दि मॉडर्न स्टेट, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, लंदन।
2. शर्मा रश्मि, 2021. प्रशासन एवं लोकनीति : अवधारणा एवं सिद्धांत, साहित्य भवन प्रकाशन आगरा।
3. सिन्हा मनोज, प्रशासन एवं लोकनीति, ओरिएंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद।
4. माहेश्वरी एस. आर. एवं अवस्थी ए., लोक प्रशासन लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
5. सप्रू आर. के., लोक नीति : सूत्रीकरण, कार्यान्वयन तथा मूल्यांकन, जवाहर पब्लिशर्स ऐंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली।
6. साहनी, प्रदीप, 1979. पब्लिक पालिसी स्कोप एंड लॉजिक, प्रेटिस हॉल, यू.एस.ए.।
7. ईस्टन, डी. (1957), ऐन एप्रोच टू द अनलिसिस ऑफ पॉलिटिकल सिस्टम्स, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस यू.के.।

इकाई–4–लोक नीति के अध्ययन का महत्व : आधुनिक परिदृश्य

4.0 उद्देश्य

4.1 परिचय

4.2 लोक–नीति के अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व

4.3 भारत में लोक–नीति का अनुभव

4.4 लोक–नीति का आधुनिक परिदृश्य

4.5 सारांश

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप,

- लोक–नीति के अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व को समझ पाएंगे।
- भारत में लोक–नीति प्रक्रिया के अनुभव पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- लोक–नीति के आधुनिक परिदृश्य की चर्चा करने में सक्षम हो जायेंगे।

4.1 परिचय

लोक नीति का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि लोक–नीति और उसके परिदृश्य के बीच का संबंध बहुत करीबी और गतिशील है। समाज की लगातार बढ़ती जटिलता के साथ, लोक नीति का महत्व निरंतर बढ़ता जा रहा है। यह न केवल सरकारी गतिविधियों के कारणों और प्रभावों के विवरण और व्याख्या से संबंधित है, बल्कि लोक नीति को आकार देने वाली शक्तियों के बारे में वैज्ञानिक ज्ञान के विकास से भी संबंधित है। यह अंतःक्रिया विभिन्न देशों में लोक नीति के क्षेत्र में विभिन्न अनुभवों को जन्म देती है। यही कारण है कि सभी देशों की लोक नीतियाँ एक जैसी नहीं होती हैं। यदि ऐसा मान भी लिया जाए कि उनकी नीतियां एक जैसी हैं, तो भी उनकी प्राथमिकताएं अलग–अलग हैं। इसलिए, प्रत्येक देश की प्राथमिकताएं उसकी लोक नीतियों की प्रकृति को प्रभावित करती हैं। लोक नीतियों की बदलती प्रकृति के कारण, इन नीतियों का गहन अध्ययन आवश्यक हो जाता

है। ये नीतियां कैसे निर्धारित की जाती हैं? क्या ये प्राथमिकताओं को ध्यान में रखकर निर्धारित की जाती हैं? क्या ये उपलब्ध संसाधनों का पूरा उपयोग करने में सक्षम हैं? इन सभी प्रश्नों की ठीक से जांच की जानी चाहिए।
लोक नीति किसी सामाजिक व्यवस्था को अतीत से भविष्य की ओर ले जाने के लिए एक महत्वपूर्ण तंत्र है। उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण के वर्तमान युग में सरकार की क्षमता नीतियों के निर्माण और उनके क्रियान्वयन में निहित है। नीति–निर्माण का मुख्य उद्देश्य ऐसे मूल्यों का निर्माण करना है जिसके माध्यम से समाज के प्रत्येक व्यक्ति का समग्र विकास किया जा सके। इस इकाई के अन्तर्गत हम व्यवस्थित लोक–नीति के अध्ययन की आवश्यकता पर प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे। साथ ही लोक नीति के अध्ययन के महत्व को रेखांकित करने की दृष्टि से भारत में लोक–नीति के अनुभव एवं लोक–नीति के आधुनिक परिदृश्य की भी चर्चा करेंगे।

4.2 लोक–नीति के अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व

तीसरी दुनिया के देशों में अधिकांश सरकारें राष्ट्रीय असंतोष को कम करने के कठिन कार्य में लगी हुयी हैं और इसके लिए सामाजिक–आर्थिक विकास का सहारा ले रही हैं। वे अपनी अर्थव्यवस्था को विकसित करने के लिए कड़ी मेहनत कर रही हैं, वे सामाजिक व्यवस्था में सुधार करना चाहती हैं और वे राष्ट्रीय विकास के प्रमुख उद्देश्यों को पूरा करने के लिए अपनी राजनीतिक प्रणाली की क्षमता बढ़ाना चाहती हैं। वे प्रासंगिक नीतियों में सुधार करना चाहते हैं। इसीलिए इस लक्ष्य के लिए आवश्यक प्रस्तावों, रणनीतियों और अवधारणाओं के अध्ययन पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। लोक नीति सामाजिक व्यवस्था को अतीत से भविष्य की ओर ले जाने के लिए एक महत्वपूर्ण तंत्र है। यह भविष्य को आकार देने में मदद करता है।
लोक नीति का निर्माण अतीत के आधार पर होता है। विकासशील देशों में लोक नीति के वर्तमान आयाम कैसे उभरे, अब वे कैसे सामने आते हैं और वर्तमान उन्हें कैसे धारण करता है– ये लोक नीति के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न हैं। इन देशों में प्रौद्योगिकी, सामाजिक संगठन, औद्योगीकरण, शहरीकरण और पर्यावरण संरक्षण की जटिलता में वृद्धि के साथ, सार्वजनिक क्षेत्र का दायरा और आकार भी अभूतपूर्व रूप से बढ़ा है। लोक नीतियों के अनुरूप सार्वजनिक कार्य भी बढ़े हैं। अतीत का अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह वर्तमान नीति प्रणाली को समझाने में मदद करता है। अतीत की नीतियां वर्तमान और भविष्य के लिए नीतियों के रूप में स्वयं को प्रस्तुत करती हैं।

लोक नीति का अध्ययन वर्तमान के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। इसके तहत नीतिगत समस्या की व्याख्या की जाती है। किसी समस्या की व्याख्या आम सहमति के बजाय संघर्ष उत्पन्न कर सकती है। नीति निर्माण के दौरान, राजनीतिक शक्ति किसी समस्या की परिभाषा को थोपने का प्रयत्न करती है। इस संदर्भ में, **स्कैट्जचेनीडट** कहते हैं: "जो कोई भी यह निर्धारित करता है कि राजनीति क्या है, वह देश चलाता है, क्योंकि विकल्पों की परिभाषा संघर्षों का विकल्प है और संघर्षों का विकल्प शक्ति देता है।" यही कारण है कि वर्तमान नीति निर्माण को समस्या का समाधान करने वाला व्यवहार माना जा सकता है, क्योंकि विकल्पों की व्याख्या करना ही सत्ता का अंतिम हथियार है।

राजनीतिक वैज्ञानिकों के आरंभिक लेखन में विभिन्न सरकारों द्वारा अपनायी गयी नीतियों और समाज पर उनके प्रभाव के प्रति रुचि दिखायी देती है। किन्तु ध्यान केवल नीतियों पर ही नहीं, बल्कि राजनीतिक प्रक्रियाओं और सरकारी संस्थाओं पर अधिक रहा है। इसका अर्थ यह नहीं है कि पारंपरिक राजनीति विज्ञान का नीति से कोई संबंध नहीं रहा है। इसका ध्यान संवैधानिक नीति, विदेश नीति और नागरिक अधिकारों से संबंधित नीतियों पर रहा है। आरंभ में ध्यान सरकार की संस्थाओं और संरचनाओं पर था, जहां लोक नीति को मूर्त रूप दिया जाता है। हालांकि, ऐसे अध्ययनों ने महत्वपूर्ण संस्थागत व्यवस्थाओं और लोक नीति के विषय के बीच संबंधों का पता नहीं लगाया। वर्तमान में राजनीति विज्ञान का ध्यान लोक नीति – सरकारी गतिविधियों के कारणों और परिणामों के विवरण, विश्लेषण और व्याख्या की ओर आकर्षित हो रहा है।

पहले अधिकतर लोगों का मानना था कि एक बार कानून बन जाए और पर्याप्त धन मुहैया करा दिया जाए तो कानून का उद्देश्य पूरा हो जाएगा। उनका मानना था कि सरकार सही नीतियां अपनाकर निर्धनता को खत्म कर सकती है और अपराध को रोक सकती है। परन्तु अब सरकारों की प्रभावशीलता को लेकर समाज वैज्ञानिकों में असंतोष बढ़ रहा है। इसी के परिणामस्वरूप अचानक लोक नीति के अध्ययन के क्षेत्र में रुचियां बढ़ी है।

4.3 भारत में लोक–नीति का अनुभव

भारत में लोक नीति का अनुभव एक जटिल और विविधतापूर्ण प्रक्रिया रही है, जिसका प्रभाव सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में देखा जा सकता है। लोक नीति एक ऐसा ढांचा होता है जिसके माध्यम से सरकारें एवं प्रशासनिक निकाय सामाजिक समस्याओं का समाधान करने और विकास की दिशा में कदम उठाने का प्रयास करते हैं। नीति प्रक्रिया की प्रकृति और इसके महत्व को और अधिक स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है, यदि हम नीति निर्माण और कार्यान्वयन के क्षेत्र में भारतीय अनुभव को लें। इस मामले का अध्ययन पर्याप्त है क्योंकि हमने लोक नीतियों के निर्माण और कार्यान्वयन का बहुत समृद्ध अनुभव संचित किया है। योजना सभी लोक–नीतियों का, आधार है। सिद्धांत रूप में, किसी भी योजनाबद्ध विकास के तहत, सभी नीतियों की गणना योजना द्वारा ही की जानी चाहिए। योजनाबद्ध सार में लोक नीति के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं पर चर्चा भारत में लोक नीति के अनुभव पर प्रकाश डाल सकती है।

इतिहास में लोक नीति का अनुभव: भारत में लोक नीति की शुरुआत औपनिवेशिक काल से हुई। ब्रिटिश शासन के दौरान, कई नीतियाँ बनायी गईं जिनका उद्देश्य शासन और संसाधनों का दोहन करना था। स्वतंत्रता के बाद, भारत सरकार ने योजनाबद्ध आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय पर ध्यान केंद्रित किया। 1951 में शुरू हुई पंचवर्षीय योजनाएँ लोक नीति का एक प्रमुख हिस्सा थीं। स्वतंत्रता के समय लोगों से एक निष्पक्ष और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना का वादा किया गया था। इस भावना को हमारे संविधान में निहित राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों में स्थान दिया गया है। चूंकि मौजूदा सामाजिक–आर्थिक ढांचे के माध्यम से लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता था, इसलिए ढांचे में ही परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की गई। स्वतंत्रता के बाद की अवधि में एक महत्वपूर्ण ढांचागत हस्तक्षेप भूमि सुधार की नीति रही है। इस नीति ने स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान आकार लिया,

किन्तु इसे योजनाबद्ध सामाजिक–आर्थिक विकास के एक हिस्से के रूप में स्वतंत्रता के बाद ही प्रभावी बनाया गया।

आधुनिक भारत में लोक नीति : आधुनिक भारत में लोक नीति गरीबी उन्मूलन, शिक्षा का अधिकार, स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार, पर्यावरण संरक्षण और तकनीकी विकास जैसी विभिन्न चुनौतियों का समाधान करने का प्रयास करती है। महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा), डिजिटल इंडिया और स्वच्छ भारत अभियान जैसी नीतियों का व्यापक प्रभाव पड़ा है।

लोक नीति की चुनौतियाँ: भारत में लोक नीति की चुनौतियों को निम्न बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है:

- भारत में जाति, भाषा, धर्म और भौगोलिक विविधता के कारण नीतियों का समान रूप से प्रभावी होना मुश्किल है।
- नीतियों का क्रियान्वयन भ्रष्टाचार और नौकरशाही जटिलताओं से प्रभावित होता है। वित्तीय संसाधनों की कमी के कारण कई बार अच्छी नीतियाँ भी अपेक्षित परिणाम नहीं दे पाती हैं।
- भारत में लोक नीति का भविष्य डिजिटल और हरित अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ रहा है। प्रौद्योगिकी के बेहतर उपयोग से नीतियों को अधिक पारदर्शी और जन कल्याणकारी बनाया जा सकता है। साथ ही, नीतियों में समावेशिता बढ़ाने और विकास का लाभ समाज के सभी वर्गों तक पहुँचाने की आवश्यकता है।

भारत में लोक नीति का अनुभव समृद्ध है, लेकिन इसे अधिक प्रभावी और उत्तरदायी बनाने के लिए निरंतर सुधार और नवाचार की आवश्यकता है।

4.4 लोक–नीति का आधुनिक परिदृश्य

लोक नीति का आधुनिक परिदृश्य तेजी से बदल रहा है। इसमें कुछ प्रमुख परिवर्तन और रुझान देखे जा सकते हैं जिन्हें निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है:

1. तकनीकी नवाचार और डिजिटल परिवर्तन

आधुनिक समय में नीति निर्माण में प्रौद्योगिकी का महत्व बढ़ गया है। सूचना प्रौद्योगिकी, डेटा एनालिटिक्स और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के उपयोग से नीतियों के डिजाइन और कार्यान्वयन में सुधार हो रहा है। इससे नीति–निर्माण अधिक सटीक, कुशल और पारदर्शी हो गया है।

2. जन भागीदारी और लोकतांत्रिक सहभागिता

आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में नागरिकों की भागीदारी बढ़ रही है। सोशल मीडिया, ऑनलाइन प्लेटफॉर्म और विभिन्न सार्वजनिक मंचों के माध्यम से आम लोग भी नीतिगत बहसों में सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं, जिससे नीति–निर्माण प्रक्रिया अधिक सहभागी बन रही है।

3. गोपनीयता और डेटा सुरक्षा

तकनीकी युग में गोपनीयता और डेटा सुरक्षा एक बड़ा मुद्दा बन गया है। आधुनिक लोक नीतियाँ डेटा संरक्षण कानून, साइबर सुरक्षा और डिजिटल अधिकारों को ध्यान में रखते हुए बनाई जा रही हैं।

4. सतत विकास और पर्यावरणीय स्थिरता

आज की नीतियों में पर्यावरणीय स्थिरता को प्राथमिकता दी जा रही है। सतत विकास लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण नियंत्रण और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण से संबंधित नीतियां तेजी से विकसित हो रही हैं।

5. समावेशिता और समानता पर जोर

समावेशी विकास सुनिश्चित करने के लिए नीतियां बनाई जा रही हैं, जिसमें लैंगिक समानता, सामाजिक न्याय और आर्थिक समावेश को ध्यान में रखा गया है। इससे समाज के हाशिए पर पड़े वर्गों को मुख्यधारा में लाया जा रहा है।

6. सार्वजनिक–निजी भागीदारी (पीपीपी)

सरकार और निजी क्षेत्र के बीच सहयोग की प्रवृत्ति बढ़ी है। सार्वजनिक–निजी भागीदारी (PPP) मॉडल को अपनाकर बुनियादी ढांचे के विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य क्षेत्रों में बेहतर सेवाएं प्रदान की जा रही हैं।

7. वैश्वीकरण एवं अंतर्राष्ट्रीय सहयोग

वैश्वीकरण के कारण आज की लोक नीतियां मात्र राष्ट्रीय सीमाओं तक सीमित नहीं हैं। वैश्विक सहयोग, अंतर्राष्ट्रीय समझौतों और विभिन्न वैश्विक संस्थाओं के माध्यम से देशों के बीच नीति–निर्माण में सहयोग बढ़ा है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में लोक नीति

भारत में नीति आयोग और राष्ट्रीय विकास परिषद दोनों ही नीति–निर्माण प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। नीति आयोग एक सलाहकार निकाय के रूप में कार्य करता है। इसकी स्थापना वर्ष 2015 में योजना आयोग के स्थान पर हुयी थी। यह आयोग देश के सामाजिक–आर्थिक विकास हेतु नीति–निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। राष्ट्रीय विकास परिषद की स्थापना 1952 में हुई थी। इसके सदस्यों में प्रधानमंत्री, केंद्रीय मंत्री, राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के मुख्यमंत्री शामिल हैं। भारतीय संविधान में राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों में मजदूरों, गरीबों, पिछड़े वर्गों, बच्चों और समाज के वंचित वर्गों के उत्थान के लिए राज्य द्वारा अपेक्षित प्रयासों का उल्लेख है। लोक नीति के माध्यम से इन वर्गों के उत्थान के लिए प्रयास किए जाते हैं। कुछ नीतियों का वर्णन निम्न प्रकार से किया जा रहा है:

1. जनसंख्या नीति

किसी देश का विकास उस देश की जनसंख्या पर निर्भर करता है। आदर्श जनसंख्या वह होती है जो किसी देश में किसी निश्चित समय में दिए गए संसाधनों का उत्पादन और उपयोग करने में सक्षम होती है। अत: प्रत्येक देश की जनसंख्या को उसके संसाधनों के आधार पर संतुलित करने का प्रयास किया जाता है। भारत की राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 2000 का उद्देश्य जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित कर 2045 तक जनसंख्या स्थिरीकरण प्राप्त करना था, ताकि सतत और समावेशी विकास सुनिश्चित किया जा सके।

2. आरक्षण नीति

भारत में आरक्षण नीति का उद्देश्य सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों को समान अवसर प्रदान करना है, ताकि उन्हें मुख्यधारा में शामिल किया जा सके। यह नीति संविधान के द्वारा सुरक्षित है और इसका प्रमुख उद्देश्य दलितों, आदिवासियों, पिछड़ी जातियों और अन्य पिछड़े वर्गों (OBC) को उच्च शिक्षा, सरकारी नौकरियों, और राजनीतिक प्रतिनिधित्व में अवसर प्रदान करना है। वर्ष 1950 से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को आरक्षण का लाभ मिलता आया है। 1990 में मंडल आयोग की सिफारिशों के आधार पर अन्य पिछड़े वर्गों (OBC) के लिए सरकारी नौकरियों और शिक्षा में 27% आरक्षण लागू किया गया। तत्पश्चात वर्ष 2019 में संविधान के 103वें संशोधन द्वारा, 10% आरक्षण आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों (EWS) के लिए जोड़ा गया, जो सामान्य वर्ग में आते हैं।

3. दिव्यांग व्यक्तियों के लिए नीति

भारत में दिव्यांग जनों (Persons with Disabilities) के लिए कई नीतियाँ और कानून बनाए गए हैं, जिनका उद्देश्य उनके अधिकारों की सुरक्षा करना, उन्हें समाज में समान अवसर प्रदान करना, और उनकी समग्र विकास में सहायता करना है।दिव्यांग अधिकार अधिनियम, 2016 (Rights of Persons with Disabilities Act, 2016) एक व्यापक कानून है, जो दिव्यांग जनों के अधिकारों की रक्षा करता है। इसके अलावा दिव्यांग जनों के लिए राष्ट्रीय नीति, 2006 (National Policy for Persons with Disabilities, 2006) भी लागू की गयी है जिसका उद्देश्य दिव्यांग जनों के स्वास्थ्य, पुनर्वास, शिक्षा, और रोजगार के अवसरों में सुधार करना है। भारत सरकार द्वारा इन नीतियों को लागू करने के साथ–साथ जागरूकता बढ़ाने और दिव्यांगजनों के प्रति समाज में संवेदनशीलता को बढ़ाने के लिए निरंतर प्रयास किए जा रहे हैं।

4. स्वास्थ्य नीति

भारत में स्वास्थ्य नीति का उद्देश्य देश की आबादी के सभी वर्गों, विशेष रूप से कमजोर और वंचित समुदायों के लिए बेहतर स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करना है। भारत की स्वास्थ्य नीतियाँ एक समग्र दृष्टिकोण पर आधारित हैं, जिनका उद्देश्य देश के हर नागरिक तक सस्ती और गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवाएँ पहुँचाना है। सरकार लगातार सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं के ढाँचे को मजबूत करने, वित्तीय मदद बढ़ाने, और ग्रामीण तथा शहरी दोनों क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच में सुधार करने के लिए विभिन्न योजनाएँ और कार्यक्रम लागू कर रही है।

5. शिक्षा नीति

भारत में शिक्षा नीति का उद्देश्य देश के सभी नागरिकों को समावेशी, सुलभ, और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना है। शिक्षा के क्षेत्र में सुधार और विकास के लिए भारत ने कई महत्वपूर्ण नीतियाँ और योजनाएँ लागू की हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 (National Education Policy,2020) 34 साल बाद भारतीय शिक्षा प्रणाली में एक बड़ा सुधार लेकर आयी है, जो शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर बदलाव लाने का उद्देश्य रखती है। नए शैक्षिक सुधारों के साथ, सरकार ने छात्रों के समग्र विकास, व्यावसायिक शिक्षा, और डिजिटल साक्षरता पर विशेष ध्यान दिया है।

शिक्षा प्रणाली को और अधिक समावेशी, सुलभ, और प्रासंगिक बनाने के लिए लगातार प्रयास किए जा रहे हैं, जिससे भारत का शिक्षा स्तर अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप हो सके।

आधुनिक परिदृश्य में लोक नीति स्वरूप बदल रहा है, और नीति प्रक्रिया अब अधिक पारदर्शी, समावेशी और प्रौद्योगिकी–संचालित होती जा रही है। इससे समाज पर अधिक सकारात्मक और दीर्घकालिक प्रभाव डालने का प्रयास किया जा रहा है।

4.5 सारांश

प्राय: यह महसूस किया जाता है कि विकासशील लोकतांत्रिक देशों में लोक नीति वैश्विक शक्तियों से प्रेरित होती है। जिसके कारण आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक नीतियां काफी प्रभावित होती हैं। 1990 के दशक तक, दुनिया भर के देश सार्वजनिक उद्यमों के निजीकरण में काफी सक्रिय थे। नीति–निर्माण और क्रियान्वयन की प्रकृति राज्य में अंतर्निहित है। लोक–नीति के अध्ययन का महत्व आज के संदर्भ में इसलिए भी प्रासंगिक है क्योंकि विकासशील राज्यों के सामने कई चुनौतियाँ हैं। परिणामस्वरूप उनकी विकास दर बहुत कम है। इन चुनौतियों से निपटने के लिए अलग–अलग नीतियाँ बनाई जाती हैं। गरीबी उन्मूलन, सर्व शिक्षा अभियान, स्वास्थ्य कार्यक्रम आदि विकास और सुशासन के लिए महत्वपूर्ण घटक हैं। इन कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता और सक्रिय भागीदारी काफी हद तक लोक नीति के माध्यम से संभव है।

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. लोक–नीति के अध्ययन के महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. भारत में लोक–नीति के अनुभव की चर्चा कीजिए।
3. वर्तमान में लोक–नीति के वैश्विक एवं भारतीय परिदृश्य की विस्तृत व्याख्या कीजिये।

बहुविकल्पीय प्रश्न:

1. आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों (EWS) के लिए 10% आरक्षण का प्रावधान संविधान के किस संशोधन द्वारा किया गया है ?

a. 103वें संशोधन द्वारा

b. 104वें संशोधन द्वारा

c. 105वें संशोधन द्वारा

d. उपरोक्त में से कोई नहीं

2. पंचवर्षीय योजनाओं की शुरूआत कब हुई ?

a. 1950में

b. 1951 में

c. 1952में

d. 1961 में

उत्तर:1.(a), 2. (b)

4.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1 मैकाइवर, आर. एम, 1966. दि मॉडर्न स्टेट, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, लंदन।

2 शर्मा रश्मि, 2021. प्रशासन एवं लोकनीति : अवधारणा एवं सिद्धांत, साहित्य भवन प्रकाशन आगरा।

3 सिन्हा मनोज, प्रशासन एवं लोकनीति, ओरिएंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद।

4 माहेश्वरी एस. आर. एवं अवस्थी ए., लोक प्रशासन लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

5 सप्रू आर. के., लोक नीति : सूत्रीकरण, कार्यान्वयन तथा मूल्यांकन, जवाहर पब्लिशर्स ऐंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली।

6 साहनी, प्रदीप, 1979. पब्लिक पालिसी स्कोप एंड लॉजिक, प्रेटिस हॉल, यू.एस.ए.।

7 ईस्टन, डी. (1957), ऐन एप्रोच टू द अनलिसिस ऑफ पॉलिटिकल सिस्टम्स, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस यू.के.।

इकाई–5 नीति–विज्ञान की नयी विधाएँ

5.0 उद्देश्य

5.1 परिचय

5.2नीति–विज्ञान का अर्थ एवं महत्त्व

5.3 नीति–विश्लेषण

5.4 नीति–विज्ञान के नए आयाम एवं दिशाएं

5.4.1 नीति जिज्ञासा पर ध्यान

5.4.2 प्रासंगिकता की निरंतरता

5.4.3 नीति–विज्ञान का लोकतंत्रीकरण

5.5 नीति–विज्ञान की नयी विधाएँ

5.6 सारांश

5.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के पश्चात आप,

- नीति–विज्ञान के अर्थ एवं महत्त्व को समझ पाएंगे।
- नीति–विश्लेषण को स्पष्ट कर पाएंगे।
- नीति–विज्ञान के नए आयाम एवं दिशाओं की चर्चा कर सकेंगे।
- नीति–विज्ञान की नयी विधाओं का वर्णन करने में सक्षम हो जायेंगे।

5.1 परिचय

नीति विज्ञान का अध्ययन मूलत: सरकारी नीतियों और उनके प्रभावों की गहरी समझ विकसित करता है। नीति विज्ञान की अवधारणा को सबसे पहले 1951 में हेराल्ड लासवेल ने स्थापित किया था। इसका उद्देश्य लोक नीति प्रक्रिया में सुधार करना है। यह निश्चित रूप से अनुशासन के लिए एक सैद्धांतिक आधार विकसित करने का एक प्रयास है। यह सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं को हल करने के लिए ठोस नीति निर्माण की प्रक्रिया है। परन्तु आधुनिक समाज की तेजी से बदलती आवश्यकताओं एवं वैश्विक परिदृश्य की जटिलता ने नीति विज्ञान को नए आयाम और प्रदान की हैं। इस इकाई में नीति विज्ञान के अर्थ, महत्व और दृष्टिकोणों पर चर्चा की जाएगी। इसके साथ ही नीति विज्ञान की नयी विधाओं को विस्तार से समझाया जाएगा।

5.2 नीति–विज्ञान का अर्थ एवं महत्त्व

नीति विज्ञान (Policy Science) वह विज्ञान है जो सरकार के कार्यों, नीतियों, प्रशासनिक प्रक्रियाओं और शासन के संचालन से संबंधित होता है। इसमें सरकार और इसके विभिन्न अंगों की कार्यशैली, नीति निर्माण, नीति क्रियान्वयन, और सरकारी संगठनों की संरचना एवं कार्यप्रणाली का अध्ययन किया जाता है। नीति विज्ञान एक ऐसा विषय है जो सरकार और जनता के बीच संबंधों को स्पष्ट करता है और प्रशासनिक कार्यों के नियमन की समझ प्रदान करता है। सामाजिक विज्ञान और व्यवहार की एक शाखा के रूप में नीति विज्ञान 1951 में 'द पॉलिसी साइंसेज' में हेराल्ड लासवेल के 'पॉलिसी ओरिएण्टेशन' शीर्षक वाले लेख के प्रकाशन के साथ उभरा। हालाँकि, इसकी जड़ें बहुत पहले तक जाती हैं। लासवेल को नीति विज्ञान का आधुनिक जनक माना जाता है, जिन्होंने नीति विज्ञान को 'सामाजिक रूप से प्रासंगिक ज्ञान' के उत्पादन और उपयोग के अनुशासन को परिभाषित करने के प्रयासों की परिणति के रूप में देखा। नीति विज्ञान के बारे में लासवेल का दृष्टिकोण (i) बहु–विषयक, (ii) प्रासंगिक, (iii) समस्या–उन्मुख, और (iv) स्पष्ट और नियामक था। इन महत्वाकांक्षी लक्ष्यों को प्राप्त करना 20वीं सदी में नीति विज्ञान समुदाय के लिए प्रमुख लक्ष्य बन गया। प्रत्येक अलग–अलग महत्व का प्रतिनिधित्व करते हैं और इनका नीति विज्ञान के मूल्यांकन तथा स्वीकृति पर स्पष्ट प्रभाव पड़ा।

नीति विज्ञान एक बहु–विषयक क्षेत्र है जो नीतियों के निर्माण, विश्लेषण, कार्यान्वयन एवं मूल्यांकन से संबंधित है। इसका उद्देश्य नीतिगत निर्णयों को अधिक प्रभावी और सटीक बनाना है ताकि यह समाज के समग्र विकास में योगदान दे सके। इसके महत्व को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है:

1. समाज की जटिल समस्याओं का समाधान

नीति विज्ञान का मुख्य उद्देश्य जटिल सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान खोजना है। यह नीतिगत चुनौतियों की पहचान करने, उनके प्रभाव का विश्लेषण करने और उनका वैज्ञानिक समाधान प्रस्तुत करने में सहायता करता है।

2. साक्ष्य आधारित नीति निर्माण

नीति विज्ञान नीतिगत निर्णयों को ठोस साक्ष्य और आंकड़ों पर आधारित करता है, जिससे नीतियों की प्रभावशीलता बढ़ जाती है। यह सुनिश्चित करता है कि नीतियाँ केवल धारणाओं या राजनीतिक विचारों पर आधारित न हों, बल्कि वास्तविक समस्याओं के विश्लेषण पर आधारित हों।

3. समावेशी और सतत विकास को बढ़ावा

यह क्षेत्र नीतियों में समावेशी और सतत विकास के सिद्धांतों को बढ़ावा देता है, ताकि सभी वर्गों का विकास सुनिश्चित किया जा सके और प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण भी किया जा सके। नीति विज्ञान ऐसे विकास मॉडल बनाता है जो दीर्घकालिक और टिकाऊ होते हैं।

4. वैश्विक चुनौतियों से निपटने में सहायक

नीति विज्ञान के माध्यम से जलवायु परिवर्तन, वैश्विक स्वास्थ्य, पलायन और आतंकवाद जैसी चुनौतियों का प्रभावी समाधान पाया जा सकता है। यह अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर समस्याओं को समझने और उनके समाधान में एकीकृत दृष्टिकोण प्रदान करने में मदद करता है।

5. सरकारी और गैर–सरकारी संगठनों के बीच सहयोग बढ़ाना

नीति विज्ञान सरकारी और गैर–सरकारी संगठनों के बीच तालमेल बढ़ाने का काम करता है। यह सुनिश्चित करता है कि सभी प्रमुख हितधारक नीति प्रक्रिया में योगदान दें, जिससे व्यापक और प्रभावी नीतियाँ बन सकें।

6. जनता की जरूरतों और हितों को केंद्र में रखना

यह जनता की जरूरतों, अपेक्षाओं और हितों का अध्ययन करके नीतियाँ बनाने में मदद करता है। नीति विज्ञान यह सुनिश्चित करता है कि विभिन्न सामाजिक समूहों की आवाज नीति निर्माण प्रक्रिया में शामिल हो और उनकी समस्याओं का समाधान हो।

7. नए और उभरते मुद्दों का विश्लेषण

नीति विज्ञान निरंतर बदलती दुनिया में उभरते मुद्दों की पहचान करता है और उनके लिए नीति निर्माण की प्रक्रिया को गति देता है। जैसे डिजिटल तकनीक, साइबर सुरक्षा और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के बढ़ते इस्तेमाल से जुड़ी नीतिगत चुनौतियाँ।

इन सभी पहलुओं से यह स्पष्ट है कि नीति विज्ञान न केवल नीति निर्माण के लिए बल्कि प्रभावी और सार्थक नीतियों के निर्माण, कार्यान्वयन और सतत मूल्यांकन के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण है। यह समाज के जटिल मुद्दों को सुलझाने और बेहतर भविष्य की ओर बढ़ने में मददगार साबित होता है।

5.3 नीति–विश्लेषण

नीतिगत निर्णयों के कारणों और परिणामों को समझना हमें व्यावहारिक समस्याओं को हल करने के लिए सामाजिक विज्ञान के ज्ञान का उपयोग करने में सक्षम बनाता है। लोक नीति से संबंधित सूचना का अधिग्रहण और प्रसार सामाजिक विज्ञान, विशेष रूप से लोक प्रशासन का एक प्रमुख विषय बन गया है। लोक नीति के निर्माण, प्रबंधन और मूल्यांकन के ऐसे ज्ञान को आमतौर पर "नीति विश्लेषण" कहा जाता है।

नीति विश्लेषण किसी कार्यक्रम के प्रभाव की जांच और मूल्यांकन करके संगठनात्मक प्रभावशीलता को मापने की एक तकनीक है। इस प्रकार, लोक नीति विश्लेषण सरकारी कार्यक्रमों पर लोक नीति के प्रभाव का आकलन करने के अलावा और कुछ नहीं है। लोक प्रशासन के शब्दकोश में, नीति विश्लेषण का अर्थ है "नीति या नीति विकल्प के प्रभाव के बारे में सहज निर्णयों के लिए एक व्यवस्थित और तथ्य–आधारित विकल्प तैयार करना।" इसका उपयोग निम्नानुसार किया जाता है:

(i) समस्या का आकलन और ज्ञानवर्धन करने के लिए,

(ii) निर्णय उपकरण के रूप में "तथ्य से पहले", और

(iii) मूल्यांकन के लिए।

नीति विश्लेषण सामाजिक वैज्ञानिकों और नीति निर्माताओं को वैज्ञानिक उपकरणों का उपयोग करके नीतिगत मुद्दों और निर्णयों की जांच करने के लिए प्रोत्साहित करता है। **थॉमस डाई ने** नीति विश्लेषण को मांगों के प्रति "विचारशील मनुष्य के व्यवहार" के रूप में वर्णित किया है।

5.4 नीति विज्ञान के नए आयाम एवं दिशाएं

नीति विज्ञान आज 'सामाजिक रूप से प्रासंगिक ज्ञान' की सरल आकांक्षा से बहुत आगे निकल आया है। नीति विज्ञान की विश्वसनीयता को वस्तुनिष्ठ अनुभवजन्य और नियामक सत्य प्रस्तुत न करने के कारण चुनौती दी जाती रही है। **इंग्राम** और **स्कीनीडर** जैसे विद्वानों ने स्वीकार किया है कि नीति विज्ञान में नीति की जिज्ञासा से नीति की सज्जा की ओर बदलाव आया है। किन्तु नीति विज्ञान का नीति की सज्जा की ओर गतिशील होना तात्कालिक या व्यापक नहीं है बल्कि यह भविष्य के लिए एक दृष्टि प्रस्तुत करता है।

5.4.1 नीति जिज्ञासा पर ध्यान

यह उल्लेखनीय है कि नीति विज्ञान में बुद्धिवाद केंद्रीय बिंदु बना रहा है। बुद्धिवाद विकल्पों को व्यवस्थित करता है, साथ ही मूल्यों को भी बढ़ाता है। यह इस धारणा को भी पुष्ट करता है कि विकल्पों की गणना वैज्ञानिक तरीके से की जा सकती है। तकनीकी और आर्थिक मानदंडों पर आधारित नीति विकल्पों की गणना लाभ को अधिकतम करने और लागत को न्यूनतम करने के लिए की जा सकती है। नीति प्रक्रिया के भाष्यकारों ने महसूस किया है कि तर्कसंगत अपेक्षाएँ वांछित वास्तविकता तक पहुँचने में विफल रहती हैं, लेकिन केवल राजनीतिक और संगठनात्मक निर्देशों पर निर्भर करती हैं जिन्हें आर्थिक तर्कसंगतता के ढांचे के भीतर विविधता की व्याख्या करने के लिए नहीं लाया जा सकता है। हालाँकि, विकल्प का बुद्धिसंगत सिद्धांत नीति परिघटना की विविधता और समृद्धि की व्याख्या नहीं कर सकता है।

1980 के दशक में, समाज में तर्क के सिद्धांत के रूप में बुद्धिवाद नीति विज्ञान के लिए उपलब्धि के बजाय एक आकांक्षा ही बना रहा। नीति विश्लेषण का आधुनिक सिद्धांत, पारंपरिक बुद्धिवादी प्रस्ताव पर जोर देने के बजाय, 'तर्कसंगत विचारधाराओं की राजनीति' पर निर्भर करता है, जिसके तहत तर्कसंगत नीति जांच नीति विज्ञान के 'व्यक्तिपरक' प्रतिरूप की जगह लेती है। तर्कसंगत प्रस्तावों के साथ नीति विज्ञान की संदर्भ–उन्मुख और स्पष्ट रूप से नियामक प्रकृति विकसित करने की संभावना जुड़ी हुई है। नीति विज्ञान के नए प्रस्ताव समाज में

व्यावहारिक कारण और संचार के सिद्धांत पर आधारित प्रतीत होते हैं। नीति जिज्ञासा या तर्क की विधि, समाज में युक्ति के सिद्धांत पर निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति सुनिश्चित करते हुए, नीति विज्ञान में उभरे अमूर्त विभाजनों को भी मजबूत कर सकती है। नीति जिज्ञासा एक नए विकास का प्रतिनिधित्व कर सकती है, यदि यह समस्याओं से मुक्त न हो, न ही यह एक प्रभावी उत्तर हो।

5.4.2 प्रासंगिकता की निरंतरता

यह दावा किया जा सकता है कि नीति विज्ञान ने शैक्षणिक और सार्वजनिक संगठन के परिदृश्य को बदलने में जबरदस्त सफलता पाई है। एक अनुशासन के रूप में यह जटिल सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों को हल करने के लिए प्रासंगिक है। आर्थिक नीतियों और सार्वजनिक सरोकार के मुद्दों को नीति विज्ञान के प्रणालीगत दृष्टिकोण से लाभ मिल सकता है। अपने संक्षिप्त इतिहास के बावजूद, नीति विज्ञान के पास सरकारी हस्तक्षेप के लाभों का पर्याप्त अनुभव है। 1990 के दशक में, संरक्षणवादी राजनीतिक आंदोलनों ने इस धारणा को चुनौती दी और सवाल किया कि क्या सामाजिक परिवर्तन के लिए सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक है। नीति विश्लेषणों की खोज राजनीतिक विचारधाराओं के एक विस्तृत वर्णक्रम का समर्थन करते हुए पाए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, जावस ने बेहतर प्रबंधन के लिए निजीकरण की रणनीति की सलाह दी है।

5.4.3 नीति–विज्ञान का लोकतंत्रीकरण

जैसा कि उल्लेख किया गया है, विज्ञान सम्मत बुद्धिवाद के स्थान पर सहभागी नीति विश्लेषण एवं उत्तर सकारात्मकतावादी प्रतिरूप स्थापित हो रहा है। प्रचलित मूल्यों के बारे में गंभीर चिंता है। 21वीं सदी के पहले दशक में, नीति प्रक्रिया में सार्वजनिक भागीदारी पर बहुत ध्यान दिया जा रहा है। और, ऐसा प्रतीत होता है कि नीति विज्ञान को 'लोकतंत्र का नीति विज्ञान' बनने के लासवेलवादी लक्ष्य को प्राप्त करने की आवश्यकता है, चूंकि मानवीय स्थिति प्रायः संख्यात्मक सीमाओं से परे होती है। लेकिन उत्तर–सकारात्मक प्रस्ताव सहभागी नीति विश्लेषण के साथ पूरी तरह त्रुटियुक्त नहीं है, परन्तु यह भविष्य के लिए एक नई दृष्टि की आशा प्रदान करता है।

5.5 नीति–विज्ञान की नयी विधाएं

नीति विज्ञान (Policy Science) एक गतिशील और बहुविषयक क्षेत्र है जो समय के साथ विकसित हुआ है और इसमें कई नई विधाएं उभर कर सामने आई हैं। ये विधाएं नीतियों के अध्ययन, निर्माण, विश्लेषण और क्रियान्वयन के तरीकों को अधिक व्यापक और प्रभावी बनाती हैं। कुछ प्रमुख नई विधाएं इस प्रकार हैं:

1. साक्ष्य–आधारित नीति

यह विधा निर्णय लेने की प्रक्रिया में ठोस, वैज्ञानिक साक्ष्यों और आंकड़ों का उपयोग करती है। इसमें नीतियों के प्रभाव का विश्लेषण करके उन्हें अधिक सटीक और प्रभावी बनाने पर ध्यान दिया जाता है। उदाहरण के लिए, सार्वजनिक स्वास्थ्य नीतियों में डेटा और शोध का उपयोग करके रोगों की रोकथाम और उपचार के प्रभावी तरीके ढूंढना।

2. नियमित नीति विश्लेषण

इसमें नियमों और कानूनों के निर्माण, उनके क्रियान्वयन और उनके आर्थिक, सामाजिक, और पर्यावरणीय प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। यह विधा यह सुनिश्चित करती है कि नियम जटिलताओं को कम करें और जनता के हितों की रक्षा करें। इस विधा में नियमों के बोझ को कम करने और व्यापारिक वातावरण को सरल बनाने पर भी जोर होता है।

3. सहभागी नीति निर्माण

यह दृष्टिकोण नीति निर्माण प्रक्रिया में समुदाय, नागरिक समाज और निजी क्षेत्र जैसे विभिन्न हितधारकों को शामिल करने पर आधारित है। यह सुनिश्चित करता है कि नीति निर्माण एकतरफा न होकर समावेशी हो। इसमें नीति निर्माण में जनता की भागीदारी, विशेषज्ञ की राय और स्थानीय संगठनों के साथ सहयोग शामिल है।

4. स्थिरता और हरित नीति

पर्यावरणीय चुनौतियों के बढ़ते प्रभाव के साथ, नीति विज्ञान में स्थिरता और हरित नीति पर अधिक ध्यान जाने लगा है। यह अनुशासन पर्यावरण संरक्षण, नवीकरणीय ऊर्जा और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण को प्राथमिकता देता है। यह कार्बन उत्सर्जन को कम करने, स्वच्छ ऊर्जा को बढ़ावा देने और सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) को प्राप्त करने की रणनीतियों पर ध्यान केंद्रित करता है।

5. सहभागी नीति विश्लेषण

यह नीति निर्माण की एक विधा है जो जनता की भागीदारी को प्राथमिकता देती है। इसमें नीति के क्रियान्वयन से प्रभावित होने वाले लोगों की राय और सुझावों को ध्यान में रखा जाता है। इसके माध्यम से नीति निर्माण एक संवादात्मक प्रक्रिया बन जाती है, जिसके माध्यम से लोगों की वास्तविक समस्याओं को समझा और हल किया जा सकता है।

ये सभी विधाएं नीति विज्ञान को अधिक समावेशी, सटीक और प्रभावी बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। समाज की जटिलता और वैश्विक चुनौतियों को देखते हुए, इन नयी विधाओं का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है।

5.6 सारांश

उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि नीति विज्ञान एक उभरता हुआ शास्त्र है और यदि नीति प्रस्तावों में विवेकपूर्ण निर्णय–प्रक्रिया को प्रोत्साहित किया जाए, नीति विश्लेषण व्यवस्थित तरीके से किया जाए, नीति प्रक्रिया में समुचित शोध और परीक्षण किया जाए, नीतियों की गंभीरता से वकालत की जाए और नागरिक पूर्ण रूप से सहयोग दें, तो हम निश्चित रूप से इस विषय को विकसित करने की दिशा में काम कर सकते हैं। नीति विज्ञान की नई विधाएँ सामाजिक, आर्थिक, और तकनीकी बदलावों के अनुरूप विकसित हुई हैं। यह न केवल सरकारों को बेहतर नीति निर्माण के लिए प्रेरित करती हैं, बल्कि समाज के व्यापक हितों के लिए एक संरचित दृष्टिकोण प्रदान करती हैं। इन नीतियों का विकास और प्रभाव समाज के सभी वर्गों पर सकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। इस इकाई में नीति विज्ञान के अर्थ, महत्व और नीति–विश्लेषण के बारे में जानकारी दी

गयी है। नीति विज्ञानों के प्रति दृष्टिकोणों पर चर्चा की गयी है। इसमें नीति विज्ञान के नए आयामों और दिशाओं पर भी प्रकाश डाला गया है।

5.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. नीति–विज्ञान के अर्थ एवं महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
2. नीति–विश्लेषण को स्पष्ट कीजिए।
3. नीति–विज्ञान के नए आयाम एवं दिशाओं की विस्तृत व्याख्या कीजिये।
4. नीति–विज्ञान की नयी विधाओं की चर्चा कीजिये।

बहुविकल्पीय प्रश्नः

1. नीति विज्ञान की अवधारणा को सर्वप्रथम किसने स्थापित किया?

a. थॉमस डाई ने
b. इंग्राम और स्कीनीडर ने
c. हेराल्ड लासवेल ने
d. उपरोक्त में से कोई नहीं

2. निम्न में किसने नीति विश्लेषण को मांगों के प्रति "विचारशील मनुष्य के व्यवहार" के रूप में वर्णित किया है ?

a. थॉमस डाई ने
b. डेविड ईस्टन ने
c. हेराल्ड लासवेल ने
d. स्कीनीडर ने

उत्तरः 1.(c), 2. (a)

5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. शर्मा रश्मि, 2021. प्रशासन एवं लोकनीति : अवधारणा एवं सिद्धांत, साहित्य भवन प्रकाशन आगरा।
2. सिन्हा मनोज, प्रशासन एवं लोकनीति, ओरिएंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद।
3. माहेश्वरी एस. आर. एवं अवस्थी ए., लोक प्रशासन लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
4. सप्रू आर. के., लोक नीति : सूत्रीकरण, कार्यान्वयन तथा मूल्यांकन, जवाहर पब्लिशर्स ऐंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली।
5. साहनी, प्रदीप, 1979. पब्लिक पालिसी स्कोप एंड लॉजिक, प्रेटिस हॉल, यू.एस.ए.।
6. ईस्टन, डी. (1957), ऐन एप्रोच टू द अनलिसिस ऑफ पॉलिटिकल सिस्टम्स, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस यू.के.।

।। सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ।।
उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

UGPA - 103
लोक नीति - I

खण्ड
2
नीति निर्माण : संरचना और प्रक्रिया - I

इकाई- 6

अंतर - सरकारी सम्बन्ध 53

इकाई- 7

राजनीतिक कार्यपालिका की भूमिका 60

इकाई- 8

अधिकारी तंत्र की भूमिका 68

इकाई- 9

विधानमंडल की भूमिका 75

खंड–2 :नीति निर्माण : संरचना और प्रक्रिया–I

यह खण्ड नीति–निर्माण संरचना और प्रक्रिया से सम्बन्धित है। नीति निर्माण करना संसद का प्रमुख कार्य है। विधायिका कानून निर्माण के लिए लोक सभा या राज्य सभा में प्रस्ताव प्रस्तुत करती है। चर्चा वाद–संवाद के बाद उस विधेयक पर संसद अनुमोदन के लिए मुहर लगाती है। इसके उपरांत विधेयक कानून का रूप ले लेता है, जिसे पूरे देश में लागू कर दिया जाता है। इस खंड में 4 इकाइयां हैं।

इकाई 6 : अंतर–सरकारी सम्बन्ध : लोक नीतियां प्रशासकीय संगठनों और अभिकरणों की एक जटिल प्रणाली द्वारा कार्यान्वित की जाती है। अंतर–सरकारी संबंधो के द्वारा सरकार के कार्मिकों, सरकारी संपत्ति एवं कानूनी शक्तियों को नियंत्रित किया जाता है।

इकाई 7 : राजनीतिक कार्यपालिका की भूमिका : संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होती है। नीति का निर्धारण और निष्पादन दोनो ही इनके आधिकार क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं। यह संसद या विधान सभाओं द्वारा सभी कानूनों और नीतियों को लागू करती है।

इकाई 8 : अधिकारी तंत्र की भूमिका : अधिकारी तंत्र कार्य विशेषीकरण पर आधारित होता है। इनकी विशेष प्रस्थिति होती है। अधिकारी तंत्र के कार्य योग्यता प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व इनके पदों से जुड़े होते हैं। तथा इनके कार्यों का स्पष्ट विभाजन होता है। पदाधिकारी अपने सरकारी कार्यो के लिए अपने उच्चाधिकारी के प्रति जवाबदेह एवं उत्तरदायी होते हैं।

इकाई 9 : विधानमंडल की भूमिका : संसदीय प्रणाली में विधायिका सर्वोच्च होती है। यह मुख्यतया विधिमूलक भूमिका का निर्वहन करती है। विधायिका जन साधारण की मांगों तथा शिकायतों आदि को व्यक्त करने वाले मंच के साथ–साथ लोकनीतियों से संबद्ध मुद्दों पर सार्वजनिक वाद–संवाद के मंच प्रदान करने का भी काम करती है।

इकाई – 6 अंतर–सरकारी सम्बन्ध

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 अंतर–सरकारी सम्बन्ध का अर्थ

6.3 नीति–निर्माण में अंतर–सरकारी सम्बन्धों की भूमिका

6.4 अंतर–सरकारी सम्बन्धों द्वारा नीतियों के प्रस्ताव

6.5 नीतियों पर अंतर–सरकारी सम्बन्धों का प्रभाव

6.6 सारांश

6.7 अभ्यासार्थप्रश्न

6.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप–

- अंतर–सरकारी सम्बन्ध के अर्थ को समझ सकेंगे।
- नीति–निर्माण में अंतर–सरकारी सम्बन्धों की भूमिका को समझ सकेंगे।
- अंतर–सरकारी सम्बन्धों द्वारा नीतियों के प्रस्ताव को समझ सकेंगे।
- नीतियों पर अंतर–सरकारी सम्बन्धों के प्रभाव को समझ सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

भारतीय संविधान के निर्माताओं और परिणामी प्रशासकों ने सचेत रूप से यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया है कि सत्ता और अधिकार में संतुलन संघ के अनुकूल होना चाहिए। इस प्रकार भारत ने एकात्मक प्रवृत्ति वाल सरकारी ढाँचे को अपनाया सरकार या सरकारी अधिकारी नीतिगत लक्ष्य को हासिल करने के लिये सदैव तत्पर रहते है। सरकारे उपयुक्त नीतियों को चुनती है प्रशासन ऐसे मुद्दों की तरफ ध्यान देता है जो सार्वजनिक महत्व के होते है। वर्तमान परिदृश्य में सरकार द्वारा निर्णय लिये जाते है जो प्रशासन उसमें अपनी सलाहकारी भूमिका अदा करता है। अंतर–सरकारी सम्बन्ध अपने सबसे बुनियादी स्तर पर एक ही देश के भीतर विभिन्न विधायिकाओं के बीच सम्बन्ध होते है। ऊपर की ओर एक प्रत्यावर्तित या स्थानीय सरकार और केन्द्रीय सरकार के

बीच या समतल उन राज्यों के बीच जो सरकार के समान स्तर पर काम करते है। इसमें वो बैठकें भी शामिल है जिसके अन्तर्गत अधिकारी सरकार में अपने सहयोगियों से मिलकर बैठके करते है। जिसमें डेटा साझाकरण, नेविगेशन, विकास आदि के मुद्दों पर विस्तृत चर्चायें की जाती है।

6.2 अंतर–सरकारी सम्बन्ध का अर्थ

अन्तर–सरकारी संबध अपने सबसे बुनियादी स्तर पर एक ही देश के भीतर विभिन्न अधिकारियों पदाधिकारियों के बीच सम्बन्ध हैं। सरकार के अधिकारी अपने–अपने सहयोगियों से मिलते हैं। अन्तर–सरकारी सम्बन्धों के अन्तर्गत वो बैठकें शामिल हैं जिसमें डेटा साझाकरण नेविगेशन, विकास आदि मुद्दों पर विस्तृत चर्चाएँ की जाती है। ऊपर की ओर एक प्रत्यावर्तित या स्थानीय सरकार और केन्द्रीय सरकार के बीच या समतल, उन राज्यों के बीच जो सरकार के समान स्तर पर कार्य करते हैं। पारस्परिक रूप से दो राज्य संचालित प्रशासनों के बीच अथवा बहुपक्षीय रूप से जब कई सार्वजनिक संस्थाएं भाग लेती है।

औपचारिक और संगठित उदाहरण के लिये मानक नियोजित लिपिक उच्चतम बिन्दुओं के साथ स्पष्ट रूप से प्रेषण और योजनाओं के साथ अथवा अनौपचारिक और अचानक जिसमें बैठकें जब कम समय में होती हैं। केवल महत्वपूर्ण मुद्दों के लिये हो होती है। अधिकांशतः देशों में नौकरशाही की बहुत औपचारिक प्रक्रियाएं होती है।

अंतर–सरकारी सम्बधों का कार्य नीति–निर्माण में सहयोग करना तथा नीतियों का कार्यान्वयन है। नीतियों का कार्यान्वयन मशीनरी तंत्र पर केंद्रित रहता है भारतीय कार्यबल सरकार द्वारा नियोजित है। कानून या संविधि के रूप नीति पारित हो जाने के पश्चात उसके साथ क्या होता है यह सरकारी कर्मचारियो के कार्यों भूमिका द्वारा तय होता है। अन्य देशों की तरह भारत में भी लोक नीतियाँ प्रशासकीय संगठनों और अभिकरणों की एक जटिल प्रणाली द्वारा कार्यान्वित की जाती है वे अनेक कार्य निष्पादित करते है। उद्यमो को संचालित करना व्यापक सार्वजनिक सरोकार बन जाता हैं।

6.3 नीति–निर्माण में अंतर–सरकारी सम्बन्धों की भूमिका

नीति–निर्माण प्रक्रिया एक जटिल प्रक्रिया होती है इसमें वातावरणीय परिवेश जिसमे मांगे एवं आवश्यकताएं शामिल है। नीति निर्माण प्रक्रिया में अन्तर–सरकारी सम्बन्धों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। एक राजनीतिक प्रणाली जो पहले संसाधन जुटाने का कार्य करती है इसमें प्रशासकीय संगठन प्रणाली शामिल होती जो नीतिगत निर्णयों की कार्यान्वित करती है।

मोरिली एस गाइडल कार्यान्वयन को प्रशासकीय क्रिया की एक सामान्य क्रिया मानते है। जिसका मूल्यांकन नीतिगत लक्ष्यों के लिये कार्यक्रम सम्बन्धी परिणामों को माप कर किया जा सकता है लेखक के अनुसार कार्यान्वयन की सामान्य क्रिया तभी शुरू हो सकती है जब सामान्य लक्ष्यों उद्देश्यों की अभिकल्पना कर ली गई

हो। और जब लक्ष्यों को प्राप्त करने लिये पर्याप्त निधियां आवंटित कर दी गई है। कार्यान्वयन को व्यवस्था उपागम के दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिये जो नीति निर्माण करने के प्रयास और इसके कार्यान्वियन के बीच एक सम्पर्क सूत्र है। उन नीतिगत लक्ष्यों और आवश्यक तंत्रों के संदर्भ में निर्धारित होती है। जिसके माध्यम से इन नीतिगत कार्यवाही मे परिवर्तित किया जाता है। प्रक्रिया के बारे में उस दृष्टिकोण से तर्क का केन्द्र बिंदु यह है कि चीजों को घटित कराना पड़ता है। और कार्यान्वयन को अपने आप में एक सकारात्मक उद्देश्यपरक माना जाना चाहिये।

भारत सरकार द्वारा नियोजित कानून या संविधि के रूप में नीति पारित हो जाने के पश्चात उसे किस प्रकार से संचालित करना है यह सरकारी कर्मचारियों के कार्यो एवं उनकी भूमिका द्वारा तय होता है लोक नीतियाँ प्रशासकीय संगठनों और अभिकरणों की एक जटिल प्रणाली द्वारा कार्यान्वित की जाती है। वे अनेक कार्य निष्पादित करते हैं। नौकरशाही सरकार की एक कार्यपालक शाखा है। यह एक गैर–निर्वाचित नियोजित अधिकारियों के विधि निकाय से मिलकर बना एक प्रशासकीय संगठन है। जो उनकी सेवाशर्तो को अभिशासित करने वाले नियमों के अनुसार सोपानीय रूप में विभागों में संगठित है। यह एक महत्वपूर्ण संस्था है जो सरकार के कार्यों को निष्पादित करती है। अंतर–सरकारी सम्बन्धों के द्वारा सरकार के कार्मिकों, धन सामग्रियों और कानूनी शक्तियों को निवेशित किया जाता है। और इसी संस्था को कार्यकारी विधायी और न्यायिक निर्णयकर्ताओं से कार्यान्वयन सम्बन्धी अधिकांश निवेश प्राप्त होते हैं।

राष्ट्रीय, अन्तरर्राष्ट्रीय एवं देश के आम नागरिकों के लिये नीति–निर्माण कार्य जारी रहता है। जिसे विज्ञापन एवं अंतर–सरकारी सम्बन्धों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। इसके बाद कानून या विधायन स्वयं लागू नहीं होता बल्कि इसे लागू करने के लिये उपयुक्त संगठनों और कार्मिकों को शक्तियाँ प्रत्यायोजित करने की आवश्यकता होती है। कार्यक्रम को परिप्रेक्ष्य में रखना कार्यान्वयन का प्रथम कार्य है और किसी स्थापित कार्यक्रम का संचालन एवं कार्यान्वयन दूसरा कार्य है। अन्तर–सरकारी सम्बन्धों के कार्यान्वयन सम्बन्धी कार्य में प्रत्यायोजन और स्वविवेक की वृद्धि के कारण यह नीति–निर्माण और क्रिया के शक्ति ढांचे में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। तकनीकी रूप से सभी सार्वजनिक संगठनों और कार्मिकों का कर्म कानून और नीति को लागू करना उन्हें निष्पादित करना तथा प्रवर्तित करना है। ऐसा करने में अधिकांश कार्मिक, नौकरशाही स्वविवेक का प्रयोग करते हैं।

6.4 सरकारी सम्बन्धों द्वारा नीतियों के प्रस्ताव

लोकतांत्रिक समाज में सरकारी संरचनाओं और संस्थाओं का जाल होता है। राज्य की कई भूमिकाएं होती हैं। यह संघर्षशील सामाजिक एवं आर्थिक हितों के बीच सामंजस्य कायम करने की कोशिश करता है। सकारात्मक राज्य को समुदाय के सभी हिस्सों का अविभावक माना जाता है। लोक नीतियों के उद्देश्यों को सम्पूर्णता के साथ

लागू करने में किसी भी संगठन को सफलता नहीं मिलती और नीतिगत मुद्दो का समाधान प्रायः बहुसंख्यक जनता की प्राथमिकताओं के आधार पर किया जाता है।

बहुसंख्यक समाज मे विधायिका, कार्यकारिणी, न्यायपालिका, नौकरशाही आदि अन्तर–सरकारी संस्थाओं द्वारा व्यक्तियों और समूहों की गतिविधियाँ निर्धारित होती है।

लोक नीतियों का संगठन क्रियान्वयन और प्रवर्तन अन्तर–सरकारी सम्बन्धों के माध्यम से किया जाता है। नीति लोकनीति का आकार तब तक ग्रहण नहीं करती जब तक सरकारी संस्थाएं उसे अपना न ले और क्रियान्वित न कर लें। अन्तर–सरकारी सम्बन्ध लोकनीति को तीन अलग –अलग विशेषताएँ प्रदान करते है।

1. अन्तर सरकारी सम्बन्ध नीतियों को वैधानिक अधिकार प्रदान करते हैं। लोक नीति कुछ निर्णयों का निष्कर्ष होती है। जो कानूनी मंजूरी के आधार पर निर्धारित होती है इसे कानूनी दायित्व माना जाता है जो जनता की असाकारिता को नियंत्रित करता है।
2. लोकनीति का प्रयोग सार्वजनिक होता है जो देश के सभी नागरिक पर लागू होता है।
3. लोक नीतियों के साथ बल प्रयोग जुड़ा रहता है इनका प्रयोग सरकार के निर्णयों करने के लिये किया जाता है बल प्रयोग का अधिकार सरकार के पास सुरक्षित होता है नीतियों का उल्लंघन करने वालों के विरुद्ध सरकार कार्यवाही कर सकती है।

इस प्रकार नीतियों का अन्तर–सरकारी सम्बन्धों के साथ गहरा सम्बन्ध होता है। सामाजिक वैज्ञानिक सरकारी संरचनाओं और संस्थाओं के अध्यापन पर ध्यान केंद्रित करते हैं संस्थागत अध्ययन को लोकनीति में केन्द्रीय महत्व दिया है। इस तरह से नीति निर्माण प्रणाली के एक प्रतिमान को संस्थागत सिद्धांत कहकर पुकारा जा सकता है। चूंकि यह उन संस्थाओं की परस्पर क्रिया पर आधारित होता है जो संविधान सरकार या विधायिका द्वारा गठित होती है नीति निर्माण के दौरान प्रधानमंत्री, साँसद नौकरशाह या संबन्धित समूहों द्वारा शक्ति का प्रयोग किया जाता है प्रत्येक की शक्ति का प्रभाव नीति–निर्माण की प्रक्रिया पर पड़ता है। ऐसा कहा जा सकता है कि यही वह प्रक्रिया है जिसके जरिये लोक नीति अपना आकार ग्रहण करती है। यह प्रक्रिया सामान्यतया सम्बन्धित निर्णयों की एक श्रृंखला होती है जो शक्तिशाली व्यक्तियों और समूहों द्वारा लिये गये होते है। और एक साथ राज्य संस्था के नाम से जाने जाते हैं।

कानूनी रूप से आबद्ध निर्णयों को लागू करने वालों पर सामाजिक समूहों और सरकारी संस्थाओं के प्रभाव की व्याख्या से संस्थागत प्रस्ताव सम्बन्धित होता है। ऐसे निर्णयकर्ताओ में वे भी शामिल होते है नियम–उपनियम को औपचारिक और संवैधानिक पदों पर होते है जो सरकारी संरचनाओं और संस्थाओं के अन्तर्गत विभिन्न पदों को औपचारिक अधिकार तथा शक्ति प्रदान करते है। संस्थागत प्रस्ताव के जरिये लोकनीति और सरकारी संस्थाओं के बीच सम्बन्धों को अध्ययन से ही नीतियों के निर्माण की वास्तविक प्रक्रिया को समझा जा सकता है क्योंकि ये सरकारी संस्थाओं की परस्पर क्रिया पर आधारित होता है।

6.5. नीतियों पर अन्तर–सरकारी सम्बन्धों का प्रभाव

अन्तर–सरकारी सम्बन्ध व्यक्तियों और समूहों के व्यवहार के विन्यास को प्रतिनिधित्व करते हैं। इनका प्रभाव निर्णयों की प्रक्रिया और लोकनीति पर पड़ता है।

संस्थागत प्रस्ताव का मत है कि सरकारी संस्थाओं की संरचना ऐसी होनी चाहिये जिसमें नीतिगत निकर्ष संभव हो सके विन्यास समाज में कुछ हितों के पक्ष में हो सकते है और कुछ हितों के प्रतिकूल भी हो सकते हैं। नियम एवं संस्थागत प्रबन्ध सामान्य तौर पर अपने प्रभाव में नियोजित नहीं होते है। असल में वे समाज मे एक संरचनागत विन्यास में अन्य विन्यास की तुलना में कुछ निश्चित व्यक्ति एवं समूह सरकारी शक्ति का अधिकाधिक लाभ उठा सकते हैं। नीति निष्कर्षो पर संस्थागत विशेषताओं का प्रभाव पड़ता है। संस्थागत प्रस्ताव के अन्तर्गत संस्थागत प्रबन्धों और लोक नीति के सार के बीच सम्बन्धों का अध्ययन किया जा सकता है। नीति के मुद्दों की जाँच एक प्रणालीबद्ध तरीके से की जा सकती है और यह संस्थागत प्रबन्धों पर ध्यान केन्द्रित किया जा सकता है।

अन्तर–सरकारी सम्बंधों के वैधानिक और संरचनात्मक पक्षों पर होने वाला संस्थानिकवाद का नीति विश्लेषण के लिये प्रयोग किया जा सकता है लोकनीति पर संरचनाओं और संस्थाओं का तथा प्रबन्धन और परस्पर क्रियाओं का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ सकता है। लम्बे समय में विकसित व्यक्तियों और समूहों के व्यवहार के आधार पर अन्तर–सरकारी संरचनाओं का विन्यास होता है। अतीत में सरकारी संरचनाएं और संस्थाएँ राजनीतिक विज्ञान के लिये केन्द्रीय विषय थी परम्परागत रूप से अध्ययन का केन्द्र–बिन्दु सरकारी संरचनाओं और संस्थाओं का चित्रण था सरकारी संरचनाओं और लोक नीतिसार के बीच संपर्क के बारे में इस प्रस्ताव के जरिये पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता था इन संस्थागत विशेषताओं का लोकनीति के निर्माण पर पड़ने वाले प्रभाव के बारे मे संस्थागत प्रस्ताव में कोई प्रणालीबद्ध जिज्ञासा नहीं थी सरकारी संरचनाओं और नीति के निष्कर्षो के सम्पर्क के बारे में अत्यधिक बल दिया जाता है नौकरशाही सरकार के अधिकांश कार्यों को निष्पादित करती है। सरकार के कार्मिकों धन सामग्रियों और कानूनी शक्तियों को नियमित करती है। इसी संस्थाओं को कार्यवाही विधायी और न्यायिक निर्णयकर्ताओं से कार्यान्वयन सम्बन्धी अधिकांश निर्देश प्राप्त होते है।

6.6 सारांश

भारतीय संविधान के निर्माताओं और प्रशासकों ने सचेत रूप से यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया है कि सत्ता और अधिकार मे संतुलन संघ के अनुकूल होना चाहिए। अन्तर–सरकारी सम्बन्ध रणनीति बनाने, योजनाओं के चक्रों को समझने तथा काम को व्यापक तरीके से समझने में सहायता करता है। अन्तर–सरकारी सम्बन्ध देश के भीतर विभिन्न अधिकारियों एवं पदाधिकरियों के बीच सम्बन्ध होते है।

व्यवस्था निर्माताओं को प्रभावित करती हैं अन्तर–सरकारी सम्बन्ध देश के भीतर विभिन्न अधिकारियों एवं पदाधिकारियों के सम्बन्ध होते हैं। इनकी बैठकें डेटा साझाकरण नेविगेट, समस्याओं के निराकरण आदि से सम्बंधित होती है नीतियाँ, कानून, विज्ञापन स्वयं लागू नही होते हैं इसे लागू करने के लिये उपयुक्त संगठनों और कार्मिकों को शक्तियाँ प्रत्यायोजित करने की आवश्यकता होती है। नीतियों के कार्यान्वयन सम्बन्धी कार्य में प्रत्यायोजन और स्वविवेक की शक्ति के कारण नीति–निर्माण और नीति क्रियान्वयन के लिये अन्तर–सरकारी सम्बन्ध महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

बहुसंख्यक समाज में विधायिका कार्यकारिणी न्यायपालिका नौकरशाही आदि सरकारी संस्थाओं द्वारा व्यक्तियों और समूहों की गतिविधियाँ निर्धारित होती है लोकनीतियों का संगठन क्रियान्वयन और उसका प्रवर्तन सरकारी संस्थाएं करती है। नीति लोकनीति का आकार तब तक ग्रहण नही करती जब तक अन्तर–सरकारी सम्बन्धों द्वारा उसे अपना कर क्रियान्वित न कर लिया जाये। अन्तर–सरकारी सम्बन्ध नीतियों को वैधानिक अधिकार प्रदान करते है नीतियाँ कुछ निर्णयों का निष्कर्ष होती है तथा कुछ कानूनी मंजूरी के आधार पर निर्धारित होती हैं।

6.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अंतर–सरकारी संबंधो के अर्थ एवं क्षेत्र को स्पष्ट कीजिए।
2. अंतर–सरकारी संबंधो द्वारा नीतियों के प्रस्ताव पर चर्चा कीजिए।
3. नीतियों पर अंतर–सरकारी संबंधों का प्रभाव स्पष्ट कीजिए।
4. नीति निर्माण में अंतर–सरकारी संबंधो की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. नीति–निर्माण के लिए कौन–कौन प्रस्ताव करते हैं?

a) लोक सभा
b) राज्य सभा
c) दोनो
d) उपरोक्त में से कोई नहीं।

2. भारत सरकार की नीतियां किस पर लागू नहीं होगी ?

a) भारत देश पर
b) भारत के राज्यों पर
c) अन्य देशों पर
d) उपरोक्त में से कोई नहीं।

उत्तर: 1.(c) 2.(c)

6.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. सिन्हा मनोज, प्रशासन एवं लोकनीति, ओरिएंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद।
2. सप्रू आर. के., लोक नीति : सूत्रीकरण, कार्यान्वयन तथा मूल्यांकन, जवाहर पब्लिशर्स ऐंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली।
3. निलंगना जैन, द प्रॉब्लम ऑफ जस्टिस इज पॉलिटिकल थियरी एंड स्टेट प्रैक्टिस, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
4. शशि मणि त्रिपाठी, द ह्यूमन फेस ऑफ सुप्रीम कोर्ट ऑफ इंडिया, गंगा कावेरी पब्लिशिंग हाउस, वाराणसी।
5. संगीता आहूजा, पीपुल लॉ ऑफ जस्टिस, ओरियंट लंगमान, नई दिल्ली।
6. लास्की हेरोल्ड जे. पार्लियामेंट्री गवर्नमेंट इन लंदन, अलायन्स यूनियन लंदन।

इकाई – 7 राजनैतिक कार्यपालिका की भूमिका

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 राजनैतिक कार्यपालिका का अर्थ एवं महत्व

7.3 राजनैतिक कार्यपालिका की विशेषताएं

7.4 राजनैतिक कार्यपालिका की शक्तियाँ

7.5 राजनैतिक कार्यपालिका के कार्य

7.6 सारांश

7.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप–

1. राजनैतिक कार्यपालिका के अर्थ को समझ सकेंगे।
2. राजनैतिक कार्यपालिका की विशेषताओं को जान सकेंगे।
3. राजनैतिक कार्यपालिका के कार्य क्षेत्र को समझ सकेंगे।
4. राजनैतिक कार्यपालिका के कार्यो को समझ सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

कार्यपालिका सरकार की महत्वपूर्ण शाखाओं में से एक है। जिसके बिना सरकार काम नही कर सकती है। यह संसद विधान सभाओं द्वारा बनाये गये सभी कानूनों नीतियों को लागू करती है।

राजनैतिक कार्यपालिका निकाय के सभी सदस्य सामूहिक रूप से निर्णय देते है जो कि निर्णय देने में नीति–निर्माण करने में सामूहिक रूप से जिम्मेदार रहते है। ये महत्वपूर्ण निर्णय लेते है तथा नीति–निर्माण में अपनी अहम भूमिका निभाते है। राजनैतिक कार्यपालिका के पास असीम अधिकार एवं शक्तियाँ होती है जो संविधान द्वारा प्रदत्त है। जिसका प्रयोग जनता के हित में नियम कानून विधायिका द्वारा बनाने में किया जाता है तथा विधायिका

कार्यपालिका पर निगरानी रखती है। एवं कानूनो को स्वीकृत प्रदान करने के उपरांत राजनैतिक कार्यपालिका उसे लागू करती है।

7.2 राजनैतिक कार्यपालिका का अर्थ एवं महत्व

कार्यपालिका सरकार की महत्वपूर्ण शाखाओं में से एक है। यह संसद या विधान सभाओं द्वारा बनाये गये सभी कानूनों नीतियों को लागू करती है। राजनैतिक कार्यपालिका वह समूह है जिसे जनता के प्रतिनिधियों द्वारा चुना जाता है। जो एक निश्चित कार्यावधि के लिये जनता के प्रतिनिधि चुने जाते है। राजनैतिक कार्यपालिका संसद के माध्यम से देश के लिए नीतियों की रूपरेखा पर निर्णय देते है। प्रशासन से सम्बन्धित फैसले भी लेते है। राजनैतिक कार्यपालिका के पास असीम अधिकार एंव शक्तियाँ है जो संविधान द्वारा प्रदत्त है। समस्त कार्यपालक शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित होती है जो कि वह अपनी शक्ति का प्रयोग अपने अधिकारियों के माध्यम से करते है।

देश के शासन संचालन में राजनैतिक कार्यपालिका की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। राजनैतिक कार्यकारी सरकार के काम काज में प्रमुख भूमिका निभाते है। वे सरकार के समस्त कार्यो व नीतियों के लिये जिम्मेदार होते है। राजनैतिक कार्यपालिका नीतियाँ बनाने के लिये जनता की ओर से निर्णय लेती है। घरेलू नीतियों के अन्तर्गत कर प्रणालियों में बदलाव, न्यूनतम वेतन, किसानों के न्यूनतम समर्थन मूल्य का निर्धारण व्यापार से सम्बन्धित निर्णय, श्रम कानून, शिक्षा से सम्बन्धित नियम कानून आदि बनाते है। विदेश नीति के अन्तर्गत विदेशों से व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि समझौते नदी, जल विवाद आदि के निपटारे से सम्बन्धित नियम कानून आदि बनाते है, तथा उनसे सम्बन्धित महत्वपूर्ण फैसले लेते हैं जिसका किसी देश की अर्थव्यवस्था या सामाजिक विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। राजनीतिक कार्यपालिका राष्ट्र के नैतिक मूल्यों जैसे स्वतंत्रता समानता, भाईचारा तथा न्याय को स्थापित करने के लिये भी जिम्मेदार है। वे आम जनमानस के लिये स्कूल, कॉलेज अस्पताल, सड़क, बिजली, पानी, बैकिंग जैसी आधारभूत सुविधाओं की भी व्यवस्था करते है। विकासशील देशों की परम्परागत जीवन शैली अंधविश्वास रूढ़िवादी–कुरीतियाँ, अशिक्षा, गरीबी, बेरोजगारी, भूखमरी जैसी समस्याओं को समाप्त करके शिक्षा राजनैतिक चेतना आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए नीतियाँ विधायिका द्वारा बनता है। राजनैतिक कार्यपालिका नीतियों का लागू करती है तथा विधायिका पर नियंत्रण भी रखती है।

7.3 राजनैतिक कार्यपालिका की विशेषताएं

राजनैतिक कार्यपालिका की निम्नलिखित विशेषताएं है जैसे–

1. राजनैतिक कार्यपालिका संगठन के सदस्यों के निर्वाचन में भाग लेने के लिये उनमें कई योग्यताओं की अपेक्षा की गई है। जैसे– वह भारत का नागरिक हो, पागल या दिवालिया न हो, लाभ के पद पर न हो तथा लोकसभा के सदस्य होने की योग्यता रखता है।

2. राजनैतिक कार्यपालिका संगठन के सदस्य राजनैतिक दलों के प्रतिनिधियों के माध्यम से चुने जाते है। उन्हें 05 वर्ष के लिए निर्वाचित किया जाता है। संविधान द्वारा उन्हें कई प्रकार की शक्ति प्रदान की गई है जैसे–प्रशासनिक सैन्य, राजनयिक, विधायी एवं न्यायिक शक्ति आदि।

3. राजनैतिक कार्यपालिका राज्य की नीतियों और रूप–रेखा पर निर्णय लेती है। राजनीतिक अधिकारी वित, शिक्षा, स्वास्थ्य, सड़क बिजली, पानी, औद्योगिक विकास, डाक तार, बैकिंग, विदेश नीति, घरेलू नीति, कर्मचारियों के लिए न्यूनतम वेतन किसानों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य, जन कल्याण कार्यक्रम, महिला सशक्तिकरण एवं राष्ट्र उन्नयन से सम्बन्धित समस्त कार्यक्रमों की रूपरेखा निर्धारित करते है। विधायिका द्वारा कानून निर्माण के उपरान्त राजनैतिक कार्यपालिका कानूनों को लागू करती है।

4. राजनैतिक कार्यपालिका समूह देश में होने वाली आपदायें जैसे बाढ़, सूखा, अग्नि–शमन, अकाल आदि से निपटने के लिए देश भी नीतियों का निर्माण में अपनी भूमिका अदा करते है तथा अति पिछड़े लोगों को खाद्यान्न उपलब्ध कराकर उन्हें गरीबी रेखा के नीचे से उन्हें ऊपर उठाने कार्य किया जाता है। वर्तमान में सरकार द्वारा गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वालों को 05 किलो मुफ्त उपलब्ध करा रही है। ताकि उन्हें गरीबी रेखा के नीचे से निकालकर समाज की मुख्य धारा में जोड़ा जा सके। इस प्रकार की नीतियों को कार्यपालिका द्वारा निष्पक्ष तरीके से लागू किया जाता है ताकि समाज में भेद–भाव को कम किया जा सके समानता को बढ़ावा मिले।

5. राजनैतिक कार्यपालिका समूह सरकार और सरकार के अन्य प्रमुख विभागों के प्रमुख होते है जो नीतियों और कानूनों के कार्यान्वयन एवं राज्य के प्रशासन का कार्यभार संभालते है। ये लोग सरकार और सरकार के अन्य विभागों के प्रमुख होते हैं। नीतियों को तैयार करने और उन नीतियों के कार्यान्वयन तथा निगरानी के लिये जिम्मेदार होते है।

राजनैतिक कार्यपालिका से ऐसी नीतियाँ और कानून बनाने की उम्मीद की जाती है जिनका उपयोग राज्य में शासन का संचालन करने में किया जायेगा। एक मंत्री या मंत्रालय ऐसे कानून बनाने और फिर उन्हें विधान मंण्डल के समक्ष प्रस्तुत करने के लिये जिम्मेदार होता है। विधान मण्डल द्वारा कानून स्वीकृत होने के बाद उन्हे कुशलतापूर्वक लागू करने और शासन करने की जिम्मेदारी कार्यपालिका की होती है।

7.4 राजनैतिक कार्यपालिका की शक्तियाँ

संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होती है। नीति का निर्धारण और निष्पादन दोनों ही इनके अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। सरकार के कार्यक्षेत्र के विस्तार और राज्य के कृत्यों में वृद्धि के कारण यह साधारण रूप से स्वीकार किया जाता है कि कार्यपालिका शक्ति में वे सभी शक्तियाँ है जो विधानमण्डल और न्यायपालिका में निहित नहीं है। दूसरे शब्दों में कार्यपालिका शक्ति अवशिष्ट प्रकार की है। इसके अन्तर्गत विधान विधि और व्यवस्था बनाये रखना सामाजिक कल्याण की अभिवृद्धि आर्थिक न्याय प्रदान करना, विदेश नीति का निर्धारण करना आदि है।

साधारणतः राष्ट्र के क्रियाकलापों का संचालन राष्ट्रपति के माध्यम से किया जाता है। राष्ट्रपति में समस्त कार्यपालक शक्तियाँ निहित होती है। जैसे– प्रशासनिक शक्ति, विधायी शक्ति, शैन्य शक्ति, राजनयिक शक्ति और न्यायिक शक्ति आदि। संविधान द्वारा कार्यपालिका को निम्न शक्तियाँ प्रदान की गई है–

1. लोकसभा का कार्यकाल 05 वर्ष का होता है। किन्तु राजनैतिक कार्यपालिका द्वारा अवधि से पूर्व लोकसभा का विघटन किया जा सकता है।
2. संविधान द्वारा संसद के सदनों में प्रक्रिया सम्बन्धी स्वतंत्रता दी गई है कि वह अपने कार्य संचालन के लिये आवश्यक नियमों का निर्माण कर सकते है।
3. संविधान द्वारा राजनैतिक कार्यपालिका को शक्ति दी गई है कि संसद का अधिवेशन बुला सकते है तथा स्थगित भी कर सकते है।
4. संघीय वित्त पर कार्यपालिका का नियंत्रण रहता है वित्त विधेयक लोक सभा में प्रस्तुत करने से पूर्व विधायिका द्वारा कार्यपालिका से पूर्व अनुमति लेने की अपेक्षा की गई है। बिना विधि के कोई कर नही लगाया जा सकता है न कोई व्यय किया जा सकता है। प्रत्येक वर्ष कार्यकारिणी सदन के समक्ष बजट प्रस्तुत करती है। जिसमें आगामी वर्ष के लिये प्रस्तावित करों तथा व्यय का ब्योरा होता है। संसद में बजट पास होने के बाद कार्यपालिका की स्वीकृति की भी आवश्यकता है। कार्यपालिका से स्वीकृति मिलने के बाद ही सरकार धन की वसूली और खर्च कर सकती है।
5. 44 वें संविधान संशोधन के अनुसार राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि मंत्रिमण्डल द्वारा पारित किये गये विधेयक पर पुनर्विचार करने की अपेक्षा करता है।
6. राष्ट्रपति को केन्द्रीय सरकार के अधीन लोक सेवाओं और पदों के लिये भर्ती एंव नियुक्ति व्यक्ति की सेवा की शर्तो का विनियमन करने वाले नियम बनाने के लिये सशक्त करता है। राजनैतिक कार्यपालिका दो सदनों की संयुक्त बैठक के सम्बन्ध में प्रक्रिया के लिये नियम बनाने की शक्ति है। राजनैतिक कार्यपालिका उच्चतम न्यायालय के आदेशों को प्रवृत्त के लिये भी नियम बनाती है।
7. राजनैतिक कार्यपालिका द्वारा प्रधानमंत्री के रूप में ऐसे व्यक्ति को नियुक्त किये जाने की शक्ति हो जो बहुमत दल का नेता हो तथा अन्य मंत्रियों को कार्यपालिका द्वारा नियुक्त किया जाता है। मंत्रियों को विभागों का आवंटन भी किये जाने की शक्ति भी कार्यपालिका के पास होती है। कार्यपालिका मंत्रियों से इस्तीफा भी मांग सकती है।
8. राजनैतिक कार्यपालिका द्वारा कुछ आयोगों के प्रमुखों की नियुक्ति भी की जाती है जैसे– निर्वाचन आयोग, वित्त आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जन जाति आयोग तथा अन्तराष्ट्रीय परिषद आदि।
9. संघ राज्य क्षेत्रों का प्रशासन राष्ट्रपति के नाम से किया जाता है। राष्ट्रपति अर्थात कार्यपालिका को इन राज्य क्षेत्रों के लिये विनियम बनाने की शक्ति है जैसे–अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह, लक्षद्वीप, दादर और नागर हवेली, दमन और दीव आदि।

10. राजनैतिक कार्यपालिका (राष्ट्रपति) को अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में प्रतिवेदन देने के लिये पिछड़े वर्गो के दशाओं के अन्वेषण और सुधारने के उपाय के बारे में प्रतिवेदन करने के लिये एक आयोग को नियुक्त करने की शक्ति है।

11. संविधान कुछ ऐसी घटनाओं परिस्थितियों की परिकल्पना करता है जिन्हें समान्यतः आपात की स्थिति कहते है। अनुच्छेद 352 के तहत राजनैतिक कार्यपालिका को युद्ध बाह्य, आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह से भारत की सुरक्षा पर संकट आने पर आपात की उद्‌घोषणा करने की शक्ति है। अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत यदि राष्ट्रपति (राजनैतिक कार्यपालिका) को यह समाधान हो जाये कि किसी राज्य का प्रशासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार नही चलाया जा रहा है तो राज्य की सरकार के कोई या सभी कृत्य अपने हाथ में ले सकता है। राजनैतिक कार्यपालिका अनुच्छेद 36 के अन्तर्गत वित्तीय संकट के समय वित्तीय आपात की उद्‌घोषणा कर सकती है।

इन सभी उपबन्धों से सम्बन्धित नियम बनाने की शक्ति राजनैतिक कार्यपालिका को संविधान द्वारा प्रदत्त है।

7.5 राजनैतिक कार्यपालिका के कार्य

सरकार के कार्यक्षेत्र विस्तार और राज्य के कार्यो में वृद्धि के कारण यह साधारण रूप से स्वीकार किया जाता है। कार्यपालिका में वे शक्तियाँ है जो विधानमण्डल या न्यायपालिका में निहित नही है। इसकी प्रमुख शक्तियाँ है जैसे विधायन प्रारम्भ करना, विधि और व्यवस्था बनाये रखना, सामाजिक कल्याण की अभिवृद्धि, आर्थिक न्याय प्रदान करना, विदेश नीति का निर्धारण करना आदि। इस आधार पर राजनैतिक कार्यपालिका के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं–

1 – प्रशासनिक कार्य–

ऐसे कार्य जो प्रशासनिक प्रकृति के हैं सरकार के विभिन्न मंत्रालयों तथा विभागों द्वारा किये जाते है। संघ में सभी कार्यपालक कार्य राष्ट्रपति के नाम से किये गये सभी आदेशों को ऐसी रीति से अधिप्रमाणित किया जाता है जो राष्ट्रपति के द्वारा बनाये गये नियमों के अनुसार हो। प्रशासनिक कार्यो में नियुक्ति से सम्बन्धित कार्य सम्मिलित है जैसे– भारत के प्रधानमंत्री तथा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति भारत के महान्यायवादी की नियुक्ति, भारत के नियंत्रक महालेखा परीक्षक की नियुक्ति उच्चतम तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति, राज्यों के राज्यपाल की नियुक्ति, वित्त आयोग, संघ एवं राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष, निर्वाचन आयुक्त, अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग अध्यक्ष भाषायी अल्पसंख्यकों के अध्यक्षों आदि की नियुक्ति करते है।

2 – सैन्यकार्य–

युद्ध एवं शान्ति व्यवस्था करने की शक्ति कार्यपालिका के पास होती है। सैन्य बलों के प्रविस्तारण का समादेश करने की शक्ति होती है। कार्यपालिका बजट पर नियंत्रण से सशस्त्र बलों के प्रशिक्षण और उनके बनाये रखने के कार्य करती है।

3 – राजनयिक कार्य–

राजनयिक कार्यो के अन्तर्गत वे समस्त कार्य आते है जो विदेश से सम्बन्धित होते है। इसमें संयुक्त राष्ट्र और उसके अभिकरण तथा अन्य अन्तराष्ट्रीय संगठनों की सदस्यता सम्मिलित है। विदेशों से संधि करना भी शामिल है। अन्य कार्य विदेशों में राजदूत, उच्च आयुक्त आदि की नियुक्ति करना आदि। अन्य देश के राजनयिक प्रतिनिधियों का औपचारिक रूप से स्वागत करना भी शामिल है।

4 – विधायी कार्य–

संसद के सत्र को आहूत करने तथा सत्रावसान करने की शक्ति कार्यपालिका के पास होती है। अभिभाषण एवं संदेश की शक्ति प्राप्त है। राज्यसभा में 12 सदस्यों को नामित करने की भी शक्ति प्राप्त है। इसके अलावा कई अन्य कार्य हैं जैसे–

1. वार्षिक वित्तीय प्रतिवेदन
2. नियंत्रक महालेखा परीक्षक का प्रतिवेदन
3. वित्त आयोग की स्वीकृति से
4. संघ लोक सेवा आयोग का प्रतिवेदन
5. पिछड़ा वर्ग आयोग का प्रतिवेदन
6. राष्ट्रीय अनुसूचित एवं अनुसूचित जनजाति आयोग का प्रतिवेदन

इन सभी प्रतिवदेनों का कार्यपालिका के द्वारा स्वीकार किया जाता है। इसके अलावा कुछ विशेष विधेयकों के पुनःस्थापन के लिये पूर्व अनुमति की भी आवश्यकता होती है। अध्यादेश जारी करने की भी शक्ति है।

5 – न्यायिक कार्य–

संविधान द्वारा प्रदत्त कार्यपालिका के पास ऐसी शक्ति होती है जिसमें न्यायालय द्वारा दिये गये दण्ड को कम करने दण्ड से मुक्ति देने का उपाय होता है। किसी अपराध के लिये दोष ठहराये गये व्यक्ति के दण्ड को क्षमा प्रविलम्बन, विराम, लघुकरण करने की शक्ति प्रदान की गई हो। ये न्यायिक कार्य भी राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री के सलाह से सम्पन्न करते है।

इसके अलावा कार्यपालिका को केद्रीय सरकार के अधीन लोक सेवाओं और पदों के लिये भर्ती और नियुक्ति व्यक्ति की सेवा–शर्तो का विनियमन करने वाले नियम बनाने के लिये सशक्त करता है। कार्यपालिका को संसद के सदनों की संयुक्त बैठक के सम्बन्ध में प्रक्रिया हेतु नियम बनाने की शक्ति है।

7.6 सारांश

अतः स्पष्ट है कि राजनैतिक कार्यपालिका को लोगों द्वारा एक निश्चत अवधि के लिये चुना जाता है। राजनैतिक कार्यपालिका सरकार की महत्वपूर्ण शाखाओं में से एक है जिसके बिना सरकार काम नहीं कर सकती है। यह संसद या विधान सभाओं द्वारा बनाये गये सभी कानूनों या नीतियों को लागू करती है। यह सरकार द्वारा शुरू किये गये विभिन्न कार्यक्रमों या योजनाओं को भी लागू करती है। यदि कार्यपालिका उनका क्रियान्वयन नही करती तो नीतियों का निर्माण व्यर्थ हो जाता है। ये सभी स्तरों पर कार्य करते हैं। वे समस्याओं का समाधान खोजते हैं तथा विधानमण्डलों पर भी नजर रखते हैं।

7.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. राजनीतिक कार्यपालिका का अर्थ एवं महत्व बताइए।
2. राजनीतिक कार्यपालिका की शक्तियों का वर्णन कीजिए।
3. राजनीतिक कार्यपालिका के कार्य लिखिए।
4. राजनीतिक कार्यपालिका की विशेषताएं बताइए।

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. राजनीतिक कार्यपालिका का कौन–सा कार्य नही है ?

a) प्रशासनिक कार्य

b) राजनयिक कार्य

c) निर्माण कार्य

d) सैन्य कार्य

2. राजनीतिक कार्यपालिका का कौन–सा विधायी कार्य नही है ?

a) वार्षिक वित्तीय प्रतिवेदन

b) नियंत्रक लेखा परीक्षक का प्रतिवेदन

c) संघ लोक सेवा आयोग का प्रतिवेदन

d) राष्ट्र संघ का प्रतिवेदन

उत्तर 1. (c) 2. (d)

7.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. सिन्हा मनोज, प्रशासन एवं लोकनीति, ओरिएंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद।
2. सप्रू आर. के., लोक नीति : सूत्रीकरण, कार्यान्वयन तथा मूल्यांकन, जवाहर पब्लिशर्स ऐंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली।
3. निलंगना जैन, द प्रॉब्लम ऑफ जस्टिस इज पॉलिटिकल थियरी एंड स्टेट प्रैक्टिस, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
4. शशि मणि त्रिपाठी, द ह्यूमन फेस ऑफ सुप्रीम कोर्ट ऑफ इंडिया, गंगा कावेरी पब्लिशिंग हाउस, वाराणसी।
5. संगीता आहूजा, पीपुल लॉ ऑफ जस्टिस, ओरियंट लंगमान, नई दिल्ली।
6. लास्की हेरोल्ड जे. पार्लियामेंट्री गवर्नमेंट इन लंदन, अलायन्स यूनियन लंदन।

इकाई – 8 : अधिकारी तंत्र की भूमिका

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 अधिकारी तंत्र का अर्थ एवं परिभाषा

8.3 अधिकारी तंत्र की विशेषताएं

8.4 नीति निर्माण में अधिकारी तंत्र की भूमिका

8.5 नीतियों के प्रकार

8.6 बदलती परिस्थितियों में अधिकारी तंत्र का महत्व

8.7 सारांश

8.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप–

- अधिकारी तंत्र के अर्थ को समझ सकेंगे।
- अधिकारी तंत्र की विशेषताएं एवं कार्य–क्षेत्र को समझ सकेंगे।
- नीति–निर्माण में अधिकारी तंत्र की भूमिका को समझ सकेंगे।
- बदलती परिस्थितियों में अधिकारी तंत्र के महत्व को समझ सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

अंग्रेजी शासन काल में अधिकारी तंत्र के संगठन का प्रादुर्भाव हुआ जिसका स्वतंत्रता के पश्चात भारतीयकरण किया गया। सार्वजनिक तथा निजी सेवा के लिये इस बड़े संगठन अर्थात अधिकारी तंत्र की उत्पत्ति हुई। अधिकारी तंत्र संगठन अपने व्यवस्थित प्रशासनिक व्यवस्था के कारण राजा या चुने हुए नेतृत्व की निरंकुश शक्ति को विखण्डित कर देता है। एक व्यवस्था के रूप में राजनैतिक नेताओं को परामर्श देने में इन्हें अपनी

स्वायत्ता तथा स्वतंत्रता को बनाये रखना है। तथा निर्धारित नीतियों का निष्ठापूर्वक कार्यान्वयन करना है। राजनैतिक कार्यपालिका बहुत हद तक नीतियों के निर्माण के लिये अधिकारी तंत्र पर निर्भर है। नौकरशाही प्रशासन की एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें समस्त कर्मचारियों को कार्यालयों के पदसोपान में संगठित किया जाता है तथा प्रत्येक के पद का उत्तरदायित्व कार्यक्षेत्र स्पष्ट रूप से उल्लिखित होते है।

8.2 अधिकारी तंत्र का अर्थ एवं परिभाषा

अधिकारी तंत्र का अर्थ है नौकरशाही का एक बहुत बड़ा संगठन। अधिकारी तंत्र को सार्वजनिक तथा निजी सेवा में बड़े संगठनों की उत्पत्ति प्रमुख रुप से माना जाता है। अधिकारी तंत्र एक ऐसी प्रणाली को सन्दर्भित करता है जिसमें अधिकांश महत्वपूर्ण सरकार के निर्णयों में निर्वाचित प्रतिनिधियों के स्थान पर राज्य के अधिकारियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह अधिकारी तंत्र एक व्यवस्था के रुप में राजनैतिक नेताओं को परामर्श देने में अपनी स्वायत्तता को बनाये रखते हैं तथा निर्धारित नीतियों का निष्ठापूर्वक कार्यान्वयन करते हैं। अधिकारी तंत्र एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें समस्त कर्मचारियो को कार्यालयों के पद सोपान में संगठित किया जाता है। तथा पद एवं उत्तरदायित्व स्पष्ट रूप से उल्लिखित रहते हैं।

इस सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने अपने विचार स्पष्ट किये है जैसे–

1. मैक्स वेबर के अनुसार ''यह सार्वभौमिक सामाजिक तथ्य है तथा सामुदायिक क्रिया को युक्ति संगत रूप से सामाजिक क्रिया में बदलने का एक साधन है''।
2. मार्शल ई. डिमाक के शब्दों में ''अधिकारी तंत्र समाज की ऐसी व्यवस्था है जिसमें संस्थाएं व्यक्तियों और साधारण पारिवारिक सम्बन्ध को ढाँक देती हैं। एक विकास की अवस्था है जिसमे श्रम, विभाजन, विशेषीकरण, संगठन, पद–सोपान, नियोजन तथा ऐच्छिक या अनैच्छिक तरीके से व्यक्तियों के समूह का विभाजन, आज की अवस्था है''।
3. हंस रोजेन वर्ग ने लिखा है कि ''शासन की वर्तमान संरचना का मुख्य भाग है व्यावसायिक प्रशासन की दूर तक फैली हुयी व्यवस्था तथा मनोनीत पदाधिकारियों की सोपानात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत जी रहे हों या उदारवादी प्रजातंत्र के अन्तर्गत हम बहुत हद तक किसी न किसी प्रकार की नौकरशाही से शासित होते हैं।''
4. हरमन फाइनर का कहना है कि अधिकारी तंत्र ''स्थायी वेतन भोगी तथा कुशल अधिकारियों की एक व्यावसायिक संस्था है।''
5. आर्थर के. डेविस नौकरशाही/अधिकारी तंत्र को संरचनात्मक दृष्टिकोंण से देखते हैं। उनके अनुसार नौकरशाही ''विशिष्ट पदों का एकीकृत पद सोपान है जिसे व्यवस्थित नियमों अवैयक्तिक बने बनाये ढाँचे से परिभाषित किया जा सकता है। जहाँ वैज्ञानिक सत्तापद में निवास करती है न कि पदाधिकारी में।''

8.3 अधिकारी तंत्र की विशेषताएं

अधिकारी तंत्र की निम्नलिखित विशेषताएं है जैसे–

1. **पद–सोपान**–अधिकारी तंत्र कार्य विशेषीकरण पर आधारित होता है। उनकी विशेष प्रस्थिति होती है। अधिकारी तंत्र के कार्य योग्यता प्राधिकार एवं उत्तर दायित्व उनके पदों से जुड़े होते है, तथा उनके कार्यों का स्पष्ट विभाजन होता है। प्रत्येक छोटे कार्यालय एवं उनके अधिकारी कर्मचारी गण उच्चतर कार्यालय एवं अधिकारी के नियंत्रण तथा पर्यवेक्षण के अधीन होते हैं। पदाधिकारी अपने सरकारी कार्यों के लिये अपने उच्चधिकारी के प्रति जवाबदेह एवं उत्तरदायी होते हैं।
2. **व्यावसायिक गुण**–अधिकारी तंत्र में व्यावसायिक गुण (कार्य कुशलता पाये जाते हैं। भर्ती परीक्षा प्रणाली के तहत एवं योग्यता के आधार पर उन्हें नियुक्ति प्रदान की जाती है। उनके सम्बध दूसरों के साथ बड़े ही औपचारिक होते हैं। तथा सरकारी नीतियों के कार्यान्वयन मे भी औपचारिक तरीके से अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते हैं। उन्हें सेवा की पर्याप्त सुरक्षा तथा प्रोन्नति के समुचित अवसर के साथ ही स्थायी जीवनवृप्ति प्राप्त होती है।
3. **नियम तथा कार्य विधियाँ**– अधिकारी तंत्र नियमों के अनुरूप व्यवस्था से शासित होता है। सरकारी व्यवहार में उन्हे आचरण तथा अनुशासन के निश्चित नियमों का पालन करना होता है। प्राधिकार का प्रयोग संगठन के नियमों के अनुसार ही करना होता है जिसे लिखित तर्कसंगत अवैयक्तिक होना चाहिये।
4. **विशिष्टीकरण**– शासन के कार्य निरंतर नियम बद्ध तरीके से संगठित होते है तथा उसी के अनुसार संचालित होते हैं ये कार्य कायत्मिक रूप से भिन्न क्षेत्रों में उप विभाजित होते हैं। प्रत्येक के पास अपेक्षित प्राधिकार तथा अनुमोदन होते है। कार्यो की विशिष्टता एवं कार्यो का विशिष्टीकरण की ओर अग्रसारित करती है।
5. **संगठनात्मक गुण**–शासन के कार्यो के संचालन हेतु संगठनात्मक गुणों का होना आवश्यक है।संगठन के साधन निजी व्यक्ति के रूप में सदस्यों के साधन से शासन के संगठन में भिन्नता होती है। अधिकारियों द्वारा सरकारी कर्तव्यों के संपादन के लिये प्राप्त आवश्यक साधनों पर उनका स्वामित्व नहीं होता किन्तु सरकारी साधनों के प्रयोग के लिये उत्तरदायी होते हैं। सरकारी राजस्व तथा निजी आय को कठोरता से अलग रखा गया है। सरकारी साधनों के प्रयोग के लिये अधिकारी तंत्र में स्टाफ में संगठन एवं सहयोग का भाव होना नितांत आवश्यक है। तभी सुगमता के शासन का संचालन आपसी समन्वय के साथ किया जा सकता है।

8.4 नीति–निर्माण में अधिकारी तंत्र की भूमिका

प्रायः यह माना जाता है कि प्रशासन का मुख्य कार्य नीतियों का क्रियान्वयन अर्थात लागू करना है। किन्तु नीतियों के निर्माण में भी अधिकारी तंत्र की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। नीति निर्माण मुख्यतः विधायिका का कार्य है परन्तु इस पूरी प्रक्रिया में प्रशासन का सहयोग महत्वपूर्ण होता है। क्योंकि जमीनी हकीकत और वास्तविक आँकड़े प्रशासन के माध्यम से प्राप्त होते हैं जिसके आधार पर नीतियों का निर्माण किया जाता है। इसके अलावा विधायिका के लिये यह संभव नहीं है कि एक बार व्यापक नीति बनाने के बाद कार्य किये जाने के क्रम में आने

वाली विभिन्न तरह की समस्याओं के सन्दर्भ में उन नीतियों को आवश्यक विस्तार दे सके या उन्हें पुनः परिभाषित कर सके। क्योंकि यह कार्य प्रशासन को ही करना होता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि नीति उद्गम स्थल विधायिका ही है लेकिन आगे के सोपानों की रचना प्रशासन के ही भिन्न–भिन्न वर्ग करते हैं। भारत जैसे विकासशील देशों में नीति–निर्माण के कार्यों में प्रशासन की भूमिका निर्णायक होती जा रही है। पूरी नीति प्रशासन के द्वारा ही तैयार होती है। जिसे विभागीय मंत्री के माध्यम से सदन में प्रस्तावित किया जाता है। बहुमत होने के कारण विधायिका में प्रस्ताव प्रायः स्वीकृत हो जाता है इस तरह नीति–निर्माण में अधिकारी तंत्र की भूमिका काफी अहम हो गई है।

नीति निर्माण में अधिकारी तंत्र की भूमिका को मुख्यतः तीन क्रियाओं में विभाजित किया गया है–:

1. **सूचना देना**–नीति निर्माण के लिये सूचनाओं का होना जरूरी है क्योंकि सूचनाओं के आधार पर ही नीति का प्रारूप या मसौदा तैयार किया जाता है। किसी भी समस्या के स्वरूप को पहचानने के लिये आँकड़ो और उससे सम्बंधित विभिन्न तरह की सूचनाओं की जरूरत होती है। जो कि यह कार्य अधिकारी तंत्र ही करता है। प्रशासन द्वारा मुहैया करायी गयी सूचनाएं और आकड़े एक वस्तुनिष्ठ नीति का आधार बनते हैं।
2. **परामर्श देना**– नीति–निर्माण सम्बन्धी परामर्श देना भी प्रशासन का एक महत्वपूर्ण कार्य है क्योंकि सरकार का असली मस्तिष्क प्रशासन तंत्र ही होता है। मंत्री या मंत्रिमण्डल जो भी निर्णय लेते हैं। उसमें विभागीय सचिव, कैबिनेट सचिव आदि सचिवालय स्तर के अधिकारियों और प्रशासन तंत्र की मुख्य भूमिका होती है। यूँ ही नही कहा जाता है कि विभाग तो मूलतः सचिव ही चलाते है बल्कि इसमे सच्चाई भी है इसी तरह प्रधानमंत्री कार्यालय में भी नीतियों के सम्बन्ध में अधिकारी तंत्र की भूमिका महत्वपूर्ण होती जा रही है।
3. **विश्लेषण करना**–नीति निर्माण एक जटिल प्रक्रिया प्रशासन का कार्य यह भी होता है कि समस्याओं का विश्लेषण करे तथा उन समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित करे जिसपर तुरन्त कार्यवाही की आवश्यकता है। नीति प्रस्तावों को संविधान के उपबंधों, संसदीय विधियों तथा प्रचलित नियमों के सम्बन्ध में विश्लेषित करने का काम प्रशासन तंत्र का ही होता है। अधिकारी तंत्र द्वारा समस्याओं के विश्लेषण करने के बाद जिन बिन्दुओं पर नीतियाँ बनाने की आवश्यकता होती है उस पर विधायिका को अपने परामर्श प्रस्तुत करते है। विधायिका द्वारा समय–समय पर आने वाले प्रश्नों और समस्याओं के आलोक में नीति का निर्माण किया जाता है।

8.5 नीतियों के प्रकार

नीतियाँ सरकारी क्षेत्रों से सम्बद्ध होती है तथा इससे गैर–सरकारी क्षेत्र भी प्रभावित होते है। नीतियाँ योजना बनाने, संविधान के अनुरूप कार्य करने तथा वांछित लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता देती है। नीति कई प्रकार की होती है जैसे –

1. **मूलभूत बुनियादी नीतियाँ**–

ये नीतियाँ मूलरूप से संवैधानिक या समाज से सम्बंधित होती है। इन्हें सर्वव्यापी नीतियाँ कहा जाता है ये नीतियाँ खास वर्ग विशेष या क्षेत्र समुदाय से न होकर पूरे समाज के विकास से सम्बंधित होती हैं जैसे–शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, कानून, व्यवस्था आदि से सम्बन्धित नीतियाँ।

2. **नियंत्रक नीतियाँ –**

नियंत्रक नीतियों का सम्बन्ध उद्योग व्यापार, सुरक्षा उपायों, लोक हितकारी सेवाओं आदि के नियंत्रण से है। नियंत्रक का काम सरकार की संस्थाएं करती हैं। ये संस्थाएं प्रायः स्वायत्त होती हैं। जैसे– भारतीय रिजर्व बैंक, निर्वाचन आयोग, प्रसार भारती, राज्य परिवहन निगम आदि संस्थाएं नियंत्रक क्रियाओं से जुड़ी हुयी है ये संस्थाएं समय–समय पर अपने क्षेत्रों से सम्बन्धित नीतियों की घोषणा करती है। और नीतिगत निर्णय भी लेती है।

3. **वितरक नीतियाँ–**

ये नीतियाँ समाज के खास वर्गो से सम्बद्ध होती हैं। इन नीतियों का मूल सरोकार उन वर्गों या समूहों से होता है जो विकास की प्रक्रिया में पीछे छूट गये हैं। इन नीतियों का उद्देश्य पिछड़े तबकों को समाज की मुख्य धारा में शामिल करना होता है। इसमें विशेष अवसर लोक कल्याण के सभी कार्यक्रम आते हैं। यह एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। लक्ष्य की प्राप्ति होने तक यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन लाने में वितरक नीतियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

8.6 बदलती परिस्थितियों में अधिकारी तंत्र का महत्व

अधिकारी तंत्र को हस्तांतरित विधान में सम्मिलित विभिन्न उपबंधों की समय–समय पर समीक्षा करनी होती है ताकि उन्हें देश की तेजी से बदलती हुयी सामाजिक–आर्थिक स्थिति के अनुरूप बनाया जा सके। अधिकारी तंत्र हस्तांतरित विधान की सत्ता को सामाजिक–आर्थिक विकास के विभिन्न क्षेत्रों में प्रयोग करने में सहायता प्रदान करती है। प्रबन्धकीय विशेषज्ञ शासन को नीतियाँ बनाने में एक सहयोगी की भूमिका अदा करते हैं। इनके पास बेहतर ज्ञान होता है अधिक अनुभव और संगठनात्मक क्षमता के कारण अपने नेताओं द्वारा लिये गये निर्णयों पर मजबूत प्रभाव डाल सकते है।

विकसित देशों मे अधिकारी तंत्र को अधिक विधि संगत, कार्यकुशल एवं राजनीतिक दृष्टि से उत्तरदायी समझा जाता है। विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों मे लोक प्रशासन की भूमिका थोडी भिन्न होती है। यहाँ पर अधिकारी तंत्र का कार्य कानून एवं व्यवस्था को बनाये रखना एवं लोक नीतियों का कार्यान्वयन है। औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने विशाल संगठनो एवं उद्यमों को जन्म दिया है जिसके कारण समाज में अनेक समस्याओं का जन्म हुआ है। जैसे पर्यावरण प्रदूषण, शहरीकरण, शस्त्रीकरण, एवं हिंसा व आतंकवाद आदि। इन समस्याओं ने विकासशील समाजों मे नौकरशाही की चुनौतियों को बढ़ा दिया है। अधिकांशतः औद्योगिक समाजों की प्रकृति लोक कल्याणकारी है अतः अधिकारी तंत्र को लोक कल्याणकारी की भूमिका निभानी पड़ती है। कानून

व्यवस्था विधायन अपने आप लागू नहीं होते बल्कि इसके लिये उपयुक्त संगठनों और कार्मिकों को शक्तियाँ प्रत्यायोजित करने की आवश्यकता होती है। कार्यक्रम को परिप्रेक्ष्य में रखना कार्यान्वयन का प्रथम कार्य होता है। नौकरशाही या अधिकारी तंत्र या अधिकारी तंत्र के कार्यान्वयन सम्बन्धी कार्य में प्रत्यायोजन और स्वविवेक की शक्ति के कारण यह नीति निर्माण और नीति क्रियान्वन मे अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। तकनीकी रूप से सभी सार्वजनिक संगठनों और कार्मिकों का कार्य कानून और नीति को लागू करना उन्हें निष्पादित करना तथा प्रवर्तित करना है। ऐसा करने में अधिकारी तंत्र अपनी शक्ति एवं स्वविवेक का प्रयोग करते हैं।

8.7 सारांश

सार्वजनिक तथा निजी सेवा के लिये अधिकारी तंत्र का प्रादुर्भाव हुआ था अधिकारी तंत्र संगठन अपने व्यवस्थित प्रशासनिक व्यवस्था के कारण राजा या चुने हुए नेतृत्व की निरंकुश शक्ति को विखण्डित कर देता है। राजनैतिक नेताओं को परामर्श देते समय अपनी स्वायत्तता को और स्वतंत्रता को बनाये रखते हैं। अधिकारी तंत्र सरकार के कार्मिकों के धन, सामग्रियों और कानूनी शक्तियों को नियंत्रित करता है। इसे कार्यकारी, विधायी और न्यायिक निर्णयकर्ताओ से कार्यान्वयन सम्बन्धी अधिकांश निर्देश प्राप्त होते है। यह एक विवादास्पद प्रश्न है कि क्या अधिकारी तंत्र इतना मजबूत है कि यह राजनीतिक अभिजनों पर हावी रहते है। कानून अथवा विधायन अपने आप लागू नही होते है बल्कि इसे लागू करना पड़ता है और इसके लिये अधिकारी तंत्र की आवश्यकता होती है अधिकारी तंत्र के कार्यान्वयन सम्बन्धी कार्य में प्रत्यायोजन और स्वविवेक की शक्ति के कारण नीति–निर्माण और नीति क्रियान्वयन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। तकनीकी रूप से सभी सार्वजनिक संगठनों और कार्मिकों का कार्य कानून और नीति को लागू करना, उन्हें निष्पादित करना तथा उसे प्रवर्तित करना है। ऐसा करने में अधिकारी तंत्र अपनी शक्ति एवं स्वविवेक का प्रयोग करते हैं।

8.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अधिकारी तंत्र का अर्थ एवं परिभाषा लिखिए।
2. अधिकारी तंत्र की विशेषताएं बताइए।
3. अधिकारी तंत्र की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
4. बदलती परस्थितियों में अधिकारी तंत्र का महत्व बताइए।

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. अधिकारी तंत्र की विशेषताएं क्या नहीं है ?

a) पदसोपन

b) व्यवसायिक गुण

c) नियम एवं कार्य विधियां

d) व्यवस्थित नियमावली

2. नीति–निर्माण में अधिकारी तंत्र की भूमिका क्या नही है ?

a) अवगत होना

b) सूचना देना

c) परामर्श देना

d) विश्लेषण करना।

उत्तर 1. (d) 2. (a)

8.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. सिन्हा मनोज, प्रशासन एवं लोकनीति, ओरिएंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद।
2. सप्रू आर. के., लोक नीति : सूत्रीकरण, कार्यान्वयन तथा मूल्यांकन, जवाहर पब्लिशर्स ऐंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली।
3. निलंगना जैन, द प्रॉब्लम ऑफ जस्टिस इज पॉलिटिकल थियरी एंड स्टेट प्रैक्टिस, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
4. शशि मणि त्रिपाठी, द ह्यूमन फेस ऑफ सुप्रीम कोर्ट ऑफ इंडिया, गंगा कावेरी पब्लिशिंग हाउस, वाराणसी।
5. संगीता आहूजा, पीपुल लॉ ऑफ जस्टिस, ओरियंट लंगमान, नई दिल्ली।
6. लास्की हेरोल्ड जे. पार्लियामेंट्री गवर्नमेंट इन लंदन, अलायन्स यूनियन लंदन।

इकाई – 9 विधानमण्डल की भूमिका

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 विधानमण्डल का अर्थ

9.3 विधानमण्डल के कार्य

9.4 नीति–निर्माण में विधान मण्डल की भूमिका

9.5 नीति–निर्माण की प्रक्रिया

9.6 सारांश

9.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप–

- विधान मण्डल के अर्थ एवं कार्य को समझ सकेंगे।
- नीति निर्माण में विधान मण्डल की भूमिका को समझ सकेंगे।
- विधान मण्डल के महत्व को समझ सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

संसद नीति निर्माण की सर्वोच्च संस्था अथवा निकाय है। रिप्ले का मानना है कि सरकार की संसदीय प्रणाली में विधियिका सर्वोच्च होती है।

भारत की संसद कानून का निर्माण करती है, और सरकार के निर्णयों को वैधानिक आधार प्रदान करती है। यह करारोपण एवं भारत सरकार के वार्षिक व्ययों को आधिकारिक रूप प्रदान करती है। विधायिका विधि मूलक भूमिका का निर्वहन करने के साथ–साथ यह प्रशासनिक क्रिया–कलापों की आलोचना एवं गहरी छानबीन करती है। यह जनसाधारण की मांगों तथा शिकायतों आदि को व्यक्त करने वाले यंत्र के साथ–साथ लोक नीतियों से सम्बद्ध मुद्दों पर सार्वजनिक नीतियों के साथ–साथ सार्वजनिक संवाद के यंत्र प्रदान करने का भी काम करती

है। इस प्रकार कानून और संवैधानिक सिद्धान्त की दृष्टि से, संसद की शक्ति लोकतांत्रिक प्रणाली के सन्दर्भ में असीमित होती है। हमारे संविधान में संघीय विधान पालिका को पार्लियामेंट अथवा संसद नाम दिया गया है जो इस पूरे देश में शासन चलाने के लिये कानून बनाती है। इसमें दो सदन है ऊपरी सदन का नाम राज्य सभा तथा निम्न सदन का नाम लोक सभा है। राष्ट्रपति संसद का आवश्यक अंग होता है। विधायिका को विधि–निर्माण का पूरा अधिकार प्राप्त है।

9.2 विधानमण्डल का अर्थ

हमारे संविधान में संघीय विधान पालिका को पार्लियामन्ट अथवा संसद नाम दिया गया है जो समस्त देश मे शासन चलाने हेतु कानून का निर्माण करती है। इसमें दो सदन हैं। ऊपरी सदन का नाम राज्य सभा तथा द्वितीय सदन का नाम निम्न सदन अर्थात लोक सभा है। राष्ट्रपति संसद के किसी भी सदन का सदस्य नहीं होता है फिर भी वह संसद का आवश्यक अंग है। संसद का निम्न सदन लोकसभा जनता का प्रतिनिधित्व करता है, तथा राज्य सभा देश के सभी राज्यों की प्रतिनिधि संस्था है। संविधान में वर्णित है कि संघ के लिये एक संसद होगी जो राष्ट्रपति और दोनों सदनों से मिलकर बनेगी जिनके नाम क्रमशः लोकसभा व राज्य सभा होगें।

मोरिस जोन्स के अनुसार – ''राज्य सभा का औचित्य केवल पुनर्विचार के सन्दर्भ में है न कि राज्यों के अधिकार के सम्बन्ध में राज्य सभा दलों पर आधारित संस्था है इसलिये लोकसभा से नीति के आधार पर संघर्ष होना संभव नहीं। केवल लोकसभा के गठन में अत्यधिक रूपान्तर होने के कारण संघर्ष होने की सम्भावना है। राज्य सभा एक स्थायी सदन इसके सदस्य जनता के चुने हुये प्रतिनिधियों के द्वारा 6 वर्ष के लिये चुने जाते हैं। प्रत्येक दूसरे वर्ष 1/3 सदस्य पद मुक्त होते है। राज्य सभा के सदस्यों की अधिकतम संख्या 250 है किन्तु वर्तमान मे 245 सदस्य संख्या है। जिसमे 233 सदस्य राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों का प्रतिनिधित्व करते हैं। 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जाते है।

लोक सभा संसद का निम्न संदन है यह देश की जनता द्वारा चुने हुये प्रतिनिधियों से बनती है। इसमें अधिकतम 550 सदस्य हो सकते हैं किन्तु वर्तमान में लोक सभा की सदस्य संख्या 543 है जिसमें 530 सदस्य राज्यों का प्रतिनिधित्व करते है और 20 केन्द्रशासित प्रदेशों का प्रतिनिधित्व करते है। लोक सभा के सदस्य जनता द्वारा प्रत्यक्ष तौर पर चुने जाते हैं। प्रत्येक नागरिक जिसकी आयु 18 वर्ष है उसे वोट देने का अधिकार प्राप्त है।

चुनाव में विजेता सबसे बड़े दल के नेता को राष्ट्रपति सरकार बनाने के लिये आमंत्रित करता है। उस दल कोसदन में विश्वास मत प्राप्त होने के बाद सरकार के गठन एवं संचालन का अधिकार प्राप्त हो जाता है, लोकसभा अपने सदस्यों में से ही एक अध्यक्ष और एक उपाध्यक्ष का निर्वाचन करती है। परन्तु व्यवहार में प्रधानमंत्री अपनी मंत्रिपरिषद की सलाह से अध्यक्ष पद के लिये व्यक्ति का निर्णय करता है।

9.3. विधानमण्डल के कार्य

विधान मण्डल के निम्नलिखित कार्य हैं–

1. विधायी कार्य

संसद को विधि–निर्माण का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। प्रत्येक विधेयक के लिये दोनों सदनों का अनुमोदन तथा राष्ट्रपति की सहमति की आवश्यकता होती है। विधेयक किसी भी सदन में लाया जा सकता है। फिर सदन में पारित होने के उपरान्त दूसरे सदन में जाता है तथा विधेयक वहाँ पर भी पारित होने के उपरान्त राष्ट्रपति के पास अनुमति के लिये भेजा जाता है। पारित विधेयक पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर होने के बाद वह विधेयक कानून का रूप ले लेता है, किन्तु यदि विधेयक एक सदन में पारित होने के बाद दूसरे सदन में किसी विधेयक पर मतभेद हो जाता है, तो गतिरोध दूर करने के लिये राष्ट्रपति संयुक्त अधिवेशन बुलाता है। जिसकी अध्यक्षता लोकसभा अध्यक्ष करता है।

2. वित्तीय कार्य

धन विधेयक लोक सभा में ही पारित किया जाता है। लोकसभा द्वारा पारित होने के बाद धन विधेयक को राज्यसभा के पास उसकी सिफारशों के लिए भेजा जाता है। संविधान द्वारा यह प्रतिबंध लगा दिया गया है कि राज्य सभा अपने सुझावों के साथ धन विधेयक को 14 दिन के अन्दर ही लौटा दे। वह लोक सभा के सुझावों को स्वीकृत या अस्वीकृत कर सकती है इस सम्बन्ध में अन्तिम अधिकार लोक सभा के पास ही है। इसके अलावा लोक सभा को समस्त व्यय की स्वीकृति देने का अधिकार प्राप्त है। अनुदान सम्बधी मांगे केवल लोकसभा के समक्ष ही रखी जाती है।

3. कार्यकारी कार्य

संसदीय प्रणाली में कार्यपालिका व्यवस्थापिका का एक सहायक निकाय है। उसे व्यवस्थापिका के नियंत्रण में कार्य करना पड़ता है। कार्यकारी अधिकार मुख्यतः लोकप्रिय सदन में निहित रहता है। भारत में लोक सभा को अधिक अधिकार प्राप्त हैं। निम्नलिखित तरीकों से लोकसभा मंत्रिपरिषद पर नियंत्रण रखती है–:

1. अविश्वास प्रस्ताव द्वारा
2. पूरक प्रश्न पूछकर
3. सरकारी विधेयक या गैर–सरकारी विधेयक के प्रस्ताव को अस्वीकृत करके।
4. काम रोको प्रस्ताव द्वारा
5. अनुदान की मांग को अस्वीकृत करके।
6. आलोचना द्वारा

4. विविध कार्य

विविध कार्य निम्न लिखित है :–

1. लोकसभा राज्य सभा के साथ या सर्वोच्च या उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश की अध्यक्षता या दुराचारण के आधार पर पदच्युत करने का प्रस्ताव पास कर सकती है।

2. लोकसभा राष्ट्रपति के महाभियोग में भाग लेती है। संसद के किसी भी सदन द्वारा आरोप लगाया लगाया जाता है तथा दूसरा सदन न्यायालय के रूप में आरोप की जाँच करता है।

3. उपराष्ट्रपति को हटाने के लिये पारित प्रस्ताव लोकसभा द्वारा अनुमोदित होना चाहिये।

4. राष्ट्रपति द्वारा घोषित संकटकालीन उद्घोषणा को एक निश्चित अवधि तक लागू रहने के लिये लोकसभा तथा राज्यसभा की स्वीकृति आवश्यक है।

5. जनता की शिकायतों का निवारण–विधानमण्डल के सदस्य जनता के प्रतिनिधि होते है इसलिये उनका कर्तव्य है कि जनता कि जनता की शिकायतों को सरकार तक पहुंचाना। राजनीतिक दल जनता के स्वतंत्रता के अधिकारों के रक्षक होते हैं। वार्षिक बजट तथा अन्य अवसरों पर विपक्षी दल एवं लोकसभा के सदस्यों को, लोकतांत्रिक व्यवस्था में आलोचना का अवसर प्राप्त होता है।

9.4 नीति–निर्माण में विधानमण्डल की भूमिका

किसी भी देश की शासन व्यवस्था उसके राजनीतिक जीवन का अभिन्न अंग होती है। देश की नीतियों को लागू करके उसके लक्ष्यों को साकार बनाती है, तथा उसे सार्थकता प्रदान करती है। संविधान में विधायिका की शक्तियों का तथा उसके अधिकार तथा कर्तव्यों का वर्णन किया गया है जिसके अन्तर्गत विधायिका को विधि बनाने का अधिकार है। भारतीय संविधान में संसदीय प्रणाली को अपनाया गया है। जिसके अनुसार शासन के दो प्रधान संवैधानिक एवं वास्तविक होते हैं। तथा कार्यपालिका एवं विधायिका में घनिष्ट सम्बन्ध होता है। संसदीय प्रणाली में नीति निर्माण एवं प्रशासन एक दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े होते है। वस्तुतः विधायिका के सदस्य ही कार्यपालिका का निर्माण करते हैं। और कार्यपालिका विधायिका के प्रति उत्तरदायी होती है।

विधायिका कार्यपालिका और न्यायपालिका लोकतंत्र के तीन स्तम्भ अवश्य हैं पर परन्तु सभी स्तम्भों की स्थिति समान नहीं होती। कानून का निर्माण संसद का प्रमुख कार्य माना जाता है। इसके लिये पहल अधिकांशतया कार्यपालिका द्वारा की जाती है। सरकार विधायी प्रस्ताव पेश करती है। उस पर चर्चा तथा वाद–संवाद के बाद संसद उस पर अनुमोदन के लिए अपनी मुहर लगाती है। संसद का सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य देश के लिये कानून का निर्माण है। संसद को संघ सूची समवर्ती सूची तथा विशेष परिस्थिति में राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है।

हालांकि समवर्ती सूची पर संसद एवं राज्य विधान मण्डल दोनो को ही कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है किन्तु विरोधाभास की स्थिति में संसद द्वारा बनाये गये कानून ही मान्य होते हैं। राज्य विधानमण्डल द्वारा बनाया कानून स्वतः समाप्त हो जाता है।

नीति निर्माण में विधान मण्डल की भूमिका निम्न प्रकार से होती है। जैसे–

1. प्रशासन की देखरेख
2. बजट पारित करना
3. लोक शिकायतों की सुनवाई करना
4. विभिन्न विषयों पर योजनाओं की रूपरेखा तैयार करना।
5. राष्ट्रीय नीतियाँ
6. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध से सम्बन्धित नीतियाँ

संसदीय लोकतंत्र की परम्पराओं के पालन और उनके संरक्षण के प्रति प्रारम्भिक भारतीय सरकारें बेहद गंभीर थी 1552 से 1970 के बीच विपक्ष ने भी संसदीय कामकाज को बहुत ही गंभीरता से लिया और भारतीय संसद की विशिष्ट शैली कार्यशैली विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान किया। शून्य काल और प्रश्नकाल को सरकार की जबाबदेही सुनिश्चित करने के हथियार के रूप में विकसित करने और उसको सही तरीके से उपयोग में लाने हेतु सरकार पर दबाव बनाने का प्रयास किया। संसदीय लोकतंत्र में बहुमत का शासन है। संसद के सदनों में चर्चा का प्रावधान इसीलिये किया गया है ताकि सरकार द्वारा लाये गये विधेयकों पर सार्थक चर्चा द्वारा विपक्ष उनमें संशोधन सुझा सकें और तर्कपूर्ण ढंग से सरकार के सामने अपना दृष्टिकोंण रखकर उसके नजरिये में बदलाव लाने का प्रयास कर सके।

9.5 नीति–निर्माण की प्रक्रिया

विधि निर्माण व विधेयकों के बारे मे विशेष उल्लेखनीय बातें निम्नलिखित है :–

1. संविधान के अनुच्छेद 107 से 122 तक का सम्बन्ध विधि निर्माण की प्रक्रिया से है।
2. संसद संघ सूची, अवशिष्ट विषयों पर कानून बना सकती है। आपात कालीन स्थिति में राज्य सूची के विषयों पर भी कानून बना सकती है।
3. विधि निर्माण में संसद के तीनों अंग भाग लेते हैं।
4. सरकारी गैर–सरकारी विधेयको के पारित करने की प्रक्रिया में कोई अन्तर नहीं है।
5. साधारण विधेयक किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है परन्तु धन विधेयक केवल लोकसभा में ही प्रस्तुत किया जा सकता है।
6. राष्ट्रपति को धन विधेयकों पर पहली बार में अपनी स्वीकृति देनी होती है। साधारण विधेयकों को वह सदन में पुनर्विचार के लिये लौटा सकता है।

किसी भी विधेयक को कानून बनाने के लिये निम्नलिखित अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है :–

(क) विधेयकों का प्रस्तुतीकरण और प्रथम वाचन–

साधारण विधेयक को कोई भी संसद सदस्य लिखित सूचना देकर पेश कर सकता है। सूचना के

साथ ही विधेयक के उद्देश्यों का विवरण नत्थी होनी चाहिए। विधेयक के प्रस्तुतीकरण के लिये अध्यक्ष तिथि व समय निर्धारित करता है। अध्यक्ष की अनुमति से शीर्षक पद दिया जाता है। तथा उसके उद्देश्य पर प्रकाश डाला जाता है। विधेयक का प्रस्तुतीकरण और प्रथम वाचन एक ही बात है।

(ख) विधेयक का दूसरा वाचन–

विधेयक का प्रस्तुतीकरण पूरा होने पर विधेयक की प्रतिलिपियाँ सदन के सदस्यों को बाँट दी जाती है। और उसका द्वितीय वाचन प्रारम्भ होता है। द्वितीय वाचन के दिन विधेयक का प्रस्तावक निम्न प्रस्तावों मे से कोई एक प्रस्ताव रख सकता है। जैसे–

(i) सदन तुरन्त ही विधेयक पर विचार करें।

(ii) विधेयक को प्रवर समिति को सौंप दिया जाये।

(iii) विधेयक को जनमत जानने के लिये प्रसारित किया जाये।

केवल अत्यन्त आवश्यक सरकारी विधेयकों पर ही तुरन्त विचार किया जाता है। अधिकांशः विधेयक प्रवर समिति या संयुक्त प्रवर समिति को सौंप दिये जाते हैं। द्वितीय वाचन में सरकारी पक्ष और विरोधी पक्ष के वक्ता विधेयक के बारे में अपने सुझाव रखते हैं।

(ग) समिति द्वारा विचार–

विधेयक को प्रवर समिति के पास भेजा जाता है यह समिति विधेयक की प्रत्येक धारा पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करती है। उसमें आवश्यकतानुसार संशोधन करती है और अन्त में सदन को अपनी रिपोर्ट देती है।

प्रवर समिति की रिपोर्ट पर सदन विचार करता है। सदन में बहस होती है सदस्यों को विधेयक में संशोधन करने की छूट होती है। विधेयक की एक–एक धारा को स्वीकार या अस्वीकार किया जाता है। समस्त धाराओं पर विचार होने के बाद विधेयक का द्वितीय वाचन पूरा हो जाता है।

(घ) तीसरा वाचन–

यह वाचन बहुत संक्षिप्त और औपचारिक होता है। शाब्दिक हेर–फेर के अलावा इस अवसर पर विधेयक में किसी प्रकार के संशोधन प्रस्तावित नहीं किये जा सकते हैं। औपचारिकवाद–विवाद के उपरान्त सम्पूर्ण विधेयक पर मतदान होता है एक सदन में विधेयक पारित होने के उपरान्त दूसरे सदन में भेज दिया जाता है। दूसरे सदन में

पहले सदन की प्रक्रिया दोहराई जाती है यदि दूसरे सदन में भी विधेयक पारित हो जाता है तो राष्ट्रपति की अनुमति के लिए भेज दिया जाता है। यदि दोनो सदनो में गतिरोध की स्थिति उत्पन्न होती है तो राष्ट्रपति दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन बुलाता है।

(ड.) राष्ट्रपति की अनुमति–

दोनों सदनों द्वारा पारित होने के उपरान्त विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिये भेजा जाता है। राष्ट्रपति की अनुमति मिल जाने पर वह विधेयक कानून बन जाता और उसे सरकारी गजट में प्रकाशित कर दिया जाता है। राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि एक बार पुनर्विचार के लिये साधारण विधेयक को लौटा सकता है। यदि संसद पुनः उस विधेयक को संशोधन सहित या बिना संशोधन के किसी रूप में पारित कर दे तो उस विधेयक पर राष्ट्रपति को अनुमति देना पड़ता है।

9.6. सारांश

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि किसी भी देश की शासन व्यवस्था उसके राजनीतिक जीवन का अभिन्न अंग होती है। यह देश की नीतियों के लागू करके उसके लक्ष्यों को साकार बनाती है तथा उसे सार्थकता प्रदान करती हैं। संविधान ने विधायिका को विधि निर्माण के क्षेत्र अपार शक्ति प्रदान किया है। जिसके अन्तर्गत विधयिका देश की शासन व्यवस्था चलाने के लिये, राष्ट्रहित में, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के लिये, आर्थिक–सामाजिक–राजनैतिक विकास के लिये, आम जनमानस के हितों आदि से सम्बन्धित नीतियों का निर्माण करती है। संसदीय शासन व्यवस्था कार्यपालिका एवं विधायिका में घनिष्ट सम्बन्ध होता है। विधायिका के सदस्य ही कार्यपालिका का निर्माण करते हैं। इसलिये कार्यपालिका विधायिका के प्रति उत्तरदायी होती है। नीति–निर्माण एवं प्रशासन एकदूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े रहते हैं। नीति निर्माण कार्य में विधानमण्डल की मुख्य भूमिका होती है।

9.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. नीति–निर्माण में विधानमंडल की भूमिका बताइए।
2. विधान मंडल का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
3. नीति–निर्माण की प्रकिया के बारे में लिखिए.।

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. विधानमंडल का कार्य नहीं है–

a) विधायी कार्य

b) वित्तीय कार्य

c) अनुगामी कार्य

d) कार्यकारी कार्य

2. नीति–निर्माण में विधानमंडल की भूमिका क्या नही है?

a) प्रशासन की देखरेख

b) बजट पारित करना

c) राष्ट्रीय नीतियां बनाना

d) अंतर्राष्ट्रीय प्रबंधन करना

उत्तर 1. (c) 2. (d)

9.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. सिन्हा मनोज, प्रशासन एवं लोकनीति, ओरिएंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद।
2. सप्रू आर. के., लोक नीति : सूत्रीकरण, कार्यान्वयन तथा मूल्यांकन, जवाहर पब्लिशर्स ऐंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली।
3. निलंगना जैन, द प्रॉब्लम ऑफ जस्टिस इज पॉलिटिकल थियरी एंड स्टेट प्रैक्टिस, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
4. शशि मणि त्रिपाठी, द ह्यूमन फेस ऑफ सुप्रीम कोर्ट ऑफ इंडिया, गंगा कावेरी पब्लिशिंग हाउस, वाराणसी।
5. संगीता आहूजा, पीपुल लॉ ऑफ जस्टिस, ओरियंट लंगमान, नई दिल्ली।
6. लास्की हेरोल्ड जे. पार्लियामेंट्री गवर्नमेंट इन लंदन, अलायन्स यूनियन लंदन।

।। सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ।।

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

UGPA - 103
लोक नीति - I

खण्ड

3

नीति निर्माण : संरचना और प्रक्रिया - II

इकाई- 10

न्यायपालिका की भूमिका 85

इकाई- 11

विभिन्न अंगो की बीच अन्योन्य- क्रिया 95

इकाई- 12

भारत में नीति निर्माण प्रक्रिया : बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम 1975 का विषय परीक्षण 105

इकाई- 13

भारत में नीति निर्माण प्रक्रिया : बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम 1976 का विषय परीक्षण एवं नवीन परिप्रेक्ष्य 116

खंड – 3 :नीति निर्माण :संरचना और प्रक्रिया–II

इस खंड में 4 इकाइयां हैं जोकि नीति–निर्माण की संरचना एवं प्रक्रिया की विभिन्न अवधारणाओं से संबंधित हैं।

इकाई 10 : न्यायपालिका की भूमिका : इस इकाई के तहत भारतीय न्यायपालिका के स्वरुप को परिभाषित करते हुये, उसके प्रमुख कार्य एवं नीति–निर्माण में न्यायपालिका की भूमिका का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है।

इकाई 11 : विभिन्न अंगों के बीच अन्योन्य–क्रिया : इस इकाई में यह बताया गया है कि किस प्रकार शासन के विभिन्न अंग, जैसे-संसद, कार्यपालिका, न्यायपालिका, राजनीतिक एवं स्थायी कार्यपालिका आपस में अन्योन्य–क्रिया करते हैं।

इकाई 12 : भारत मेंनीति निर्माण प्रक्रिया : बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम 1975 का विषय परीक्षण: यह इकाई भारत में नीति–निर्माण प्रक्रिया के संदर्भ में बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम 1975 के विषय परीक्षण से संबंधित है। इसके तहत भारत में बंधुआ मजदूरी प्रथा और आजादी से पहले और बाद में इसे समाप्त करने के लिए किए गए प्रमुख प्रयासों की चर्चा की गयी है।

इकाई 13 : भारत में नीति निर्माण प्रक्रिया : बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम 1976 का विषय परीक्षण एवं नवीन परिप्रेक्ष्य : इस इकाई के अंतर्गत भारतीय संसद और नीति निर्माण तथा बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 पर चर्चा की गयी है। साथ ही बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 के प्रमुख प्रावधानों एवं इस पर दिये गये उच्चतम न्यायालय के निर्णयों के बारे में विस्तार से वर्णन किया गया है।

इकाई – 10 – न्यायपालिका की भूमिका

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 परिचय

10.2 भारतीय न्याय प्रणाली एवं उसका स्वरुप

10.3 न्यायपालिका के प्रमुख कार्य

10.4 नीति–निर्माणमें न्यायपालिका की भूमिका

10.4.1 नीति–निर्माण में न्यायपालिका का प्रभाव

10.4.2 नीति–निर्माण में न्यायपालिका का महत्त्व

10.5 न्यायिक समीक्षा

10.6 सारांश

10.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के पश्चात आप,

- भारतीय न्याय व्यवस्था एवं इसके स्वरुप को समझ पाएंगे।
- न्यायपालिका के कार्य एवं नीति निर्माण में इसकी भूमिका को स्पष्ट कर पाएंगे।
- नीति–निर्माण में न्यायपालिका के प्रभाव व महत्त्व की चर्चा कर सकेंगे।
- न्यायिक समीक्षा के सन्दर्भ में न्यायपालिका की भूमिका का वर्णन करने में सक्षम हो जायेंगे।

10.1 परिचय

भारतीय संविधान में स्वतंत्र न्यायपालिका की स्थापना की गयी है। वर्तमान समाज में न्यायपालिका का कोई दूसरा विकल्प नहीं है। इस पर निष्पक्ष एवं संपूर्ण न्याय देने का उत्तरदायित्व रहता है। भारत में न्याय–प्रक्रिया का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। भारतीय न्यायशास्त्र कानून के शासन पर आधारित था। राजा स्वयं कानून के अधीन था।प्राचीन भारत में न्यायपालिका की क्षमता, सत्यनिष्ठा, निष्पक्षता और स्वतंत्रता के मामले में किसी भी प्राचीन राष्ट्र के उच्चतम मानक थे, और इन मानकों को आज तक पार नहीं किया गया है। विवादों का निर्णय अनिवार्य रूप से प्राकृतिक न्याय के उन्हीं सिद्धान्तों के अनुसार किया जाता था जो आज के आधुनिक राज्य में न्यायिक प्रक्रिया को नियंत्रित करते हैं। प्रक्रिया और साक्ष्य के नियम आधुनिक नियमों के समान थे।न्यायमूर्ति **शान्ति स्वरूप धवन** का विचार है कि विश्व की सबसे पुरानी न्यायपालिका भारत में है। अपने पिछले खंड में, हमने नीति निर्माण में, राजनैतिक कार्यपालिका, विधानमंडल तथा अधिकारीतंत्र की भूमिकाओं पर विचार किया था। इसी प्रकार, प्रस्तुत इकाई में हम भारत में न्याय प्रणाली का स्वरुप, इसके कार्यों तथा नीति निर्माण में इसकी भूमिका पर चर्चा करेंगे।

10.2 भारतीय न्याय प्रणाली एवं उसका स्वरुप

राज्य के कार्य संचालन में न्यायपालिका की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। न्यायपालिका केवल नागरिकों के बीच के विवादों का ही निर्णय नहीं करती बल्कि यह उन विवादों पर भीनिर्णय देती है जो नागरिकों एवं राज्य के मध्य विवादों से उत्पन्न होते हैं। वास्तव में न्यायपालिका का मुख्य कार्य विधियों एवं नीतियों के क्रियान्वयन की प्रक्रिया एवं उनके औचित्य को निर्धारित करना है। अत्यंत प्राचीन समय से न्यायपालिका ने भारत की राज व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हमारे प्राचीन धर्म-ग्रंथो में इसका अत्यंत महत्व है। भारतीय संविधान में विधि तथा प्रशासनिक कार्यवाही की न्यायिक समीक्षा करने की शक्ति न्यायपालिका को प्रदत्त हैं। भारत सरकार की तीन स्वतंत्र शाखाएं हैं – कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका। भारतीय न्यायिक प्रणाली अंग्रेजों ने औपनिवेशिक शासन के दौरान स्थापित की थी। इसको आम कानून व्यवस्था के रुप में जाना जाता है जिसमें न्यायाधीश अपने निर्णयों और आदेशों से कानून का विकास करते हैं।

न्यायपालिका कानून के शासन के अनुरूप कार्य का संचालन करती है अर्थात कानून के समक्ष सभी नागरिक समान है तथा कोई भी व्यक्ति उसे समय तक निर्दोष है जब तक की कानूनी न्यायालय उसे दोषी साबित न कर दे भारतीय न्यायपालिका को भी प्राय: स्वतंत्र, निष्पक्ष तथा नागरिकों के अधिकारों एवं स्वतंत्रता का संरक्षक माना जाता है। अर्ध–संघीय व्यवस्था के अस्तित्व के बावजूद, हमारे देश में न्यायपालिका की एकीकृत संरचना को अपनाया गया है। विभिन्न प्रकार के न्यायालय देश में कई स्तर की न्यायपालिका बनाते हैं। भारत का सर्वोच्च न्यायालय नई दिल्ली में स्थित है और उसके नीचे विभिन्न राज्यों में उच्च न्यायालय हैं। उच्च न्यायालयों के नीचे जिला स्तर पर न्यायालयों की स्थापना की गयी है और उसकी अधीनस्थ अदालतें हैं जिन्हें निचली अदालत कहा जाता है।

10.3 न्यायपालिका के प्रमुख कार्य

विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं में न्यायपालिका के कार्य अलग–अलग होते हैं । न्यायपालिका के कार्यों का निरूपण राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप, संविधान की प्रकृति, राजनीतिक सत्ता की शक्तियों एवं कार्य-प्रणाली एवं स्वयं न्यायपालिका के संगठन से होता है। संविधान की कठोरता एवं लचीलापन तथा उसके लिखित या अलिखित होने से भी न्यायपालिका के कार्यों का निरूपण होता है। न्यायपालिका के कार्यों को हम निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझ सकते हैं–

1. संविधान में उल्लिखित एवं व्यवस्थापिका द्वारा बनाये गये नियमों एवं कानूनों की व्याख्या करने का अधिकार केवल सर्वोच्च न्यायालय को है। इनमें प्रयुक्त भाषा प्रायः सर्वसाधारण को समझने में कठिनाई होती है। जहाँ कानून की भाषा अस्पष्ट होती है, वहाँ न्यायपालिका न केवल कानून को स्पष्ट करती है बल्कि अपने निर्णयों से विभिन्न प्रकार के कानूनों का निर्माण भी करती है जिसे न्यायिक कानून कहते है। न्यायपालिका द्वारा की गयी व्याख्या तथा न्यायिक निर्णय कानून का महत्व व्यवस्थापिका द्वारा बनाए गए कानून के समान ही होता है।
2. अधिकतर देशों के संविधान ने अपने नागरिकों को कुछ मौलिक अधिकार दिए हैं, जब भी राज्य या किसी व्यक्ति द्वारा नागरिकों को प्रदत्त मौलिक अधिकारों का उल्लंघन किया जाता है तो नागरिक इन अधिकारों की रक्षा के लिए न्यायपालिका की शरण लेते हैं। न्यायालय विभिन्न प्रकार के लेख जारी कर नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करता है।
3. न्यायपालिका का पहला कार्य कानून के अनुसार न्याय करना और उन लोगों को दंडित करना है जो कानून का पालन नहीं करते हैं या कानून के खिलाफ आचरण करते हैं। इसके अतिरिक्त न्यायपालिका व्यक्तियों के बीच तथा व्यक्तियों और राज्य या राज्यों के बीच विवादों का निपटारा करती है। दीवानी और फौजदारी मामलों में आवश्यक तथ्यों को जानने के बाद यह अपने संबंधित पक्षों द्वारा दिए गए कानूनी तर्कों के आधार पर निर्णय लेती है। प्राचीन काल से ही न्यायपालिका का मुख्य कार्य कानून का उल्लंघन करने वालों को दंडित करना है।
4. लिखित संविधान वाले देशों में न्यायपालिका संविधान की संरक्षक होती है। विशेषकर संघात्मक राज्यों में संविधान की सर्वोच्चता होती है। विधायिका द्वारा पारित ऐसा कानून जो संविधान के विरूद्ध हो न्यायपालिका द्वारा अवैध घोषित किया जा सकता है।
5. न्यायपालिका का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य परामर्श देना भी है। आवश्यकता पड़ने पर यह मामलों की सुनवाई और निपटान करने के साथ–साथ संवैधानिक मामलों पर कार्यपालिका को सलाह भी देती है। हमारे देश का सर्वोच्च न्यायालय आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्रपति को कानूनी मामलों में सलाह दे सकता है, लेकिन राष्ट्रपति उसकी सलाह मानने के लिए बाध्य नहीं है।
6. भारत का सर्वोच्च न्यायालय अभिलेख न्यायालय के रूप में भी कार्य करता है। अभिलेख न्यायालय से

आशय है कि न्यायालय के समस्त निर्णयों को अभिलेख (Record) के रूप में सुरक्षित रखा जाता है। इन निर्णयों को भविष्य में देश की किसी भी अदालत में मिसाल के तौर पर पेश किया जा सकता है।

उपरोक्त कार्यों के अलावा, न्यायपालिका कुछ अन्य महत्वपूर्ण कार्य भी करती है जैसे विवाह, तलाक व नागरिकता के प्रमाण पत्र जारी करना, अपनी मानहानि करने पर किसी व्यक्ति को दण्डित करना, सार्वजनिक संपत्ति के न्यासी (Trustee) की नियुक्ति करना, नाबालिगों के संरक्षकों की नियुक्ति करना आदि कार्य। अमेरिका में राष्ट्रपति या किसी न्यायाधीश के खिलाफ महाभियोग लगाया जाता है तो इस पर चर्चा के लिए बुलाई गयी सीनेट की बैठक की अध्यक्षता वहां के सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश करते हैं। हमारे देश में भी शक्तियों के दुरुपयोग और भ्रष्टाचार से संबंधित मामलों के लिए न्यायाधीशों की अध्यक्षता में आयोग का गठन किया जाता है।

10.4 नीति–निर्माण में न्यायपालिका की भूमिका

एक राजनीतिक संस्था के रूप में न्याय प्रणाली किसी लोकतान्त्रिक देश में नीति–निर्माण की दृष्टि से अधिक व्यापक भूमिका निभाती है। न्यायालयों ने प्रायः विधि के कार्यान्वयन की न्यायिक समीक्षा की शक्तियों के प्रयोग के माध्यम से लोक नीति के सार को बहुत गहराई तक प्रभावित किया है। भारत की न्यायपालिका भी दो तरह से लोक नीतियों को निर्धारित करने और प्रभावित करने में रचनात्मक भूमिका निभाती है। पहला न्यायिक समीक्षा और दूसरा न्यायिक निर्णय लेने की अपनी शक्ति के माध्यम से संविधान, सर्वोच्च न्यायालय तथा राज्य स्तर पर उच्च न्यायालयों को विधायन के न्यायिक समीक्षाधिकार प्रयोग का अधिकार प्रदान करता है। न्यायालयों ने आर्थिक नियमन के क्षेत्र में सक्रिय होने के साथ–साथ सामाजिक एवं राजनीतिक सरोकारों के नये क्षेत्रों में भी कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है। अब न्यायालय अस्पतालों, जेलों तथा स्कूलों जैसी सार्वजनिक संस्थाओं एवं जन सुविधाओं के स्थान पर ध्यान दे रहे हैं।

इस प्रकार प्रशासनिक कार्रवाई के प्रति न्यायपालिका की प्रतिक्रिया का उद्देश्य राज्य की बढ़ती शक्ति के विरुद्ध नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करना है। नागरिकों के जीवन में सरकार का लगातार बढ़ता हस्तक्षेप, सामाजिक–आर्थिक समस्याओं पर कार्रवाई करने में सरकार की विफलता, न्यायपालिका की अधिक रचनात्मक भूमिका निभाने की आकांक्षा – यह सब नीति निर्माण में न्यायिक सक्रियता की निरंतरता को सुनिश्चित करने की प्रवृत्ति को दर्शाते हैं।

10.4.1 नीति–निर्माण में न्यायपालिका का प्रभाव

गतिशीलता नीति निर्माण की आत्मा है। अर्थात् नीति–निर्माण एक सतत प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में पूरी राजनीतिक व्यवस्था शामिल होती है। अत्यंत जटिल प्रक्रिया होने के कारण शासन के सभी अंग इसमें सक्रिय भूमिका निभाते हैं। न्यायपालिका द्वारा दिये गए निर्णय नीति–निर्माण में समय–समय पर मार्गदर्शक सिद्ध होते हैं। विभिन्न मामलों में

न्यायपालिका का सुझाव भी लोक नीति को प्रभावित करता है। किसी नीति का उचित कार्यान्वयन न होने पर न्यायपालिका आवश्यक आदेश दे सकती है। सामाजिक व आर्थिक विपन्नता के कारण प्रायः लोग न्याय की गुहार लगाने न्यायालय तक नहीं पहुँच पाते थे। ऐसे लोगों को राहत प्रदान करने के विचार से न्यायालय ने प्रक्रिया के सामान्य नियमो को शिथल करके स्वैच्छिक संगठनों या सामाजिक कार्यवाही समूहों या सामाजिक कार्यकर्ताओं को भी इन लोगों की तरफ से न्यायालय में न्याय की गुहार करने और उन्हें राहत दिलाने की अनुमति प्रदान की है। कभी–कभी न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के पक्ष में नीतियां बनाई जाती हैं, तो कभी–कभी इसके विपरीत, न्यायालय के निर्णय को निष्प्रभावी बनाने के लिए नीतियां बनाई जाती हैं। निर्णयों को निष्प्रभावी बनाने के लिए संविधान में संशोधन भी किया जा सकता है। हालांकि सर्वोच्च न्यायालय के पास संवैधानिक संशोधन को भी वैध या अवैध घोषित करने का अधिकार होता है।

भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में नीति–निर्माण में न्यायपालिका की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। न्यायपालिका, नीति–निर्माण के क्षेत्र में, भारतीय संविधान की उद्देशिका एवं सरंचना में तथा देश के लक्ष्यों को प्रभावी ढंग से प्राप्त करने की दृष्टि से सुझावात्मक निर्णय देकर, प्रवेश करती है। प्रायः न्यायपालिका किसी विशेष उद्देश्य से किसी विशिष्ट नीति के निर्धारण या पहले से ही विद्यमान नीति में परिवर्तन के लिए दिशा–निर्देश जारी कर सकती है।यह विधान मंडलों जैसे संसद या विधानसभा एवं कार्यपालिका के लिए भी कुछ ऐसे दिशा–निर्देश तय कर सकती है जिनका नीति–निर्माण की प्रक्रिया में पालन किया जाना आवश्यक है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि न्यायपालिका राजनीतिक प्रक्रिया का एक अनिवार्य भाग है और ऐसी प्रक्रिया जिसमें सहयोग तथा टकराव को बराबरी का दर्जा प्राप्त है। आधुनिक समय की यह मांग है कि न्यायालयों की भूमिका को मान्यता दी जाए तथा विधानमंडल, न्यायपालिका व् कार्यपालिका के बीच टकराव से यदि पूरे तौर पर न बचा जा सके तो कम से कम इसमें कमी अवश्य लायी जा सके। हालांकि यह कहा जा सकता है कि ऐसी स्थितियां भी रही हैं जब न्यायपालिका द्वारा दिए गए निर्णयों को राजनीतिक सत्ता या स्थायी कार्यपालिका अर्थात नौकरशाही द्वारा पसंद नहीं किया गया है इसके बावजूद एक सभ्य समाज की मान्यता यह रही है कि पूरे तौर पर विकसित विधानमंडल के अंग के बिना किसी समाज की कल्पना शायद की जा सकती है, परंतु किसी टिकाऊ न्यायिक व्यवस्था के बगैर किसी सभ्य समाज की शायद ही कल्पना की जा सके।

10.4.2 नीति–निर्माण में न्यायपालिका का महत्त्व

जैसा कि आप जानते हैं भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में शक्ति–विभाजन का सिद्धांत प्रभावी है जिसके तहत संविधान में व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के कार्य–क्षेत्रका स्पष्ट वर्णन है। इसके अनुसार कानून–निर्माण व्यवस्थापिका का कार्य है। इसे कार्यान्वित करना कार्यपालिका का कार्य है और व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानूनों के संविधान सम्मत होने की जांच करना न्यायपालिका का कार्य है। नीति–निर्माण में न्यायपालिका का विशेष महत्त्व है।

इसके अतिरिक्त नीति–निर्माण के क्षेत्र में राजनीतिक दल, संचार माध्यम, हित समूह तथा जनमत सरकार की सहायता करते हैं। नीति–निर्माण में न्यायपालिका भूमिका को निम्न प्रकार से समझ सकते हैं:

1. न्यायपालिका संविधान की एकमात्र संरक्षक है। न्यायपालिका यह सुनिश्चित करती है कि विधिक, कार्यकारी या प्रशासनिक कार्यवाहियों द्वारा संविधान के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन नहीं किया गया है। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु न्यायपालिका ऐसे दिशा–निर्देश निर्धारित करने का प्रयास करती है, जिनका विधानमंडल एवं कार्यपालिका, दोनों के द्वारा पालन किया जा सके। ऐसे दिशा–निर्देशों के अभाव में, न्यायालय संबद्ध पक्षों को, विधि के शासन द्वारा संविधान का उल्लंघन करने से रोकती है।
2. न्यायपालिका ने सरकार को अपनी नीतियों का निर्धारण इस प्रकार से करने में सहायता प्रदान की है ताकि उनका मौलिक अधिकारों के साथ टकराव न हो सके।
3. न्यायपालिका के निर्णयों ने भारत में संघीय व्यवस्था के सुचारू संचालन में मदद की है।
4. न्यायालय के निर्णयों द्वारा निजी हितों की सुरक्षा का मार्ग भी प्रशस्त हुआ है जैसा कि बैंक राष्ट्रीयकरण अधिनियम 1969 को रद्द करते समय किया गया था।
5. हमें ऐसे अनेक मुकदमे देखने को मिलते हैं जिनमें या तो प्रशासन द्वारा गलत ढंग से नियम निर्धारित किए गए हों या उनका क्रियान्वयन दोषपूर्ण हो ऐसे मुकदमे चयन प्रक्रिया, पदोन्नति, किसी विशेष नीति के क्रियान्वयन या उपभोक्ता मामलों से संबंधित हो सकते हैं।
6. न्यायपालिका की उद्घोषणाओं ने लोक नीतियों के सारवस्तु को भी ढाला है। कुछ नीतियां न्यायालय द्वारा आंशिक रूप से रद्द कर दी जाती हैं तथा कुछ निर्देश जारी कर दिए जाते हैं,जिन पर अमल करने के लिए सरकार को बाध्य होना पड़ता है जैसा कि भोपाल गैस–रिसाव मुकदमे में किया गया था।

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि नीति निर्माण में न्यायपालिका की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। हालाँकि, इसकी प्रकृति और सीमा विभिन्न मुकदमों में भिन्न हो सकती है। संक्षेप में,न्यायपालिका निम्न प्रावधानों को सुनिश्चित करती है:

I. केवल ऐसी नीतियों का ही निर्धारण किया जाये जो संविधान के प्रावधानों के अनुरूप हों,
II. सभी नीतियां राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा की दृष्टि से बनायी गयी हैं एवं सामाजिक तथा आर्थिक विकास की गति को तेज करने की संभावनाएं रखती हैं, और
III. सरकार द्वारा किसी नीति के सभी प्रावधानों को क्रियान्वित न करने या किसी नीति के निर्धारण की अपेक्षा करने को न्यायालयों द्वारा बहुत ही गंभीरता से लिया जाता है। ऐसे मामलों में संबद्ध प्राधिकारियों को विशिष्ट दिशा निर्देश जारी किए जाते हैं।

उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि न्यायिक प्रणाली की न केवल नीति निर्माण प्रक्रिया को प्रभावित करने में बल्कि उसकी वास्तविक तैयारियों में भी एक निश्चित भूमिका होती है क्योंकि यह सरकार को एक निश्चित दिशा देती है। इसलिए, यह लोक नीतियों को अधिक स्वीकार्य अवधि प्रदान करता है।

10.5 न्यायिक समीक्षा

जिन देशों में न्यायालयों को न्यायिक समीक्षा की शक्ति प्राप्त है, वे नीति–निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। न्यायिक समीक्षा के साधन और न्यायालयों के समक्ष लाए गए मामलों के संबंध में वैधानिक व्याख्या की शक्ति के प्रयोग ने अक्सर न्यायालयों में मुद्दे की प्रकृति एवं विषय–वस्तु को बहुत प्रभावित किया है। नीति निर्माण में न्यायपालिका की भूमिका पर ऐसी कोई भी चर्चा पूरी नहीं हो सकती जब तक न्यायिक समीक्षा में इसकी भूमिका पर प्रकाश न डाला जाए। न्यायिक समीक्षा, विशेष तौर पर एक संघीय व्यवस्था में विधानमंडलीय एवं कार्यकारी उपायों को संविधान के ढांचे के भीतर कायम रखने का न्यायपालिका के पास एक महत्वपूर्ण हथियार है। विधान मंडल का गठन मुख्यतः विधि के निर्माण हेतु किया जाता है परंतु विधि निर्माण के अतिरिक्त विधानमंडल के अनेक कार्य होते हैं तथा इसकी शक्तियां भी व्यापक हैं। परंतु संविधान के संरक्षक होने के नाते न्यायपालिका का यह कर्तव्य कि विधानमंडल द्वारा परित कोई भी कानून देश के मौलिक एवं सर्वोच्च कानून संविधान की मूल भावना के विपरीत न हो।

न्यायिक समीक्षा या न्यायिक पुनर्विलोकन न्यायालय की वह शक्ति है जिसके द्वारा न्यायालय विधायी अधिनियमों एवं कार्यपालिका के आदेशों की संवैधानिकता की जांच कर सकता है। **मैक्रेडिस** एवं **ब्राउन** के अनुसार न्यायिक समीक्षा से आशय न्यायाधीशों की उस शक्ति से है, जिसके अधीन वे उच्चतर कानून के नाम पर संविधियों तथा आदेशों की व्याख्या कर सकें एवं संविधान के विरुद्ध पाए जाने पर उसे अमान्य ठहरा सकें। **एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका** ने इसकी व्याख्या और सरल शब्दों में की है। इसके अनुसार न्यायिक समीक्षा न्यायालय की वह शक्ति है जिसके द्वारा न्यायालय किसी देश की सरकार के विधायी, कार्यकारी तथा प्रशासकीय अंगों के कार्यों का परीक्षण करता है एवं यह देखता है कि वह संविधान के प्रावधानों के अनुकूल हैं अथवा नहीं।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि न्यायपालिका को विधायिका और कार्यपालिका के कार्यों की जांच की शक्ति प्राप्त है। न्यायपालिका संविधान की संरक्षक भी है। सर्वप्रथम 1803 ईस्वी में अमेरिका में मारबरी बनाम मैडिसिन मुकदमे में मुख्य न्यायाधीश मार्शल ने न्यायिक पुनर्विलोकन के सिद्धांत का प्रतिपादन किया था। न्यायाधीश मार्शल के अनुसार न्यायालय विधि की वैधानिकता की जांच कर सकता है।

भारतीय संविधान में 'न्यायिक समीक्षा' शब्द का कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया है फिर भी उच्चतम न्यायालय को संविधान की धारा 13 के अंतर्गत यह शक्ति प्राप्त है कि:

1. भारत की सीमा में इस संविधान के लागू होने से ठीक पहले लागू विभिन्न कानून यदि वे इस भाग के प्रावधानों के अनुरूप नहीं है, उस गैर–अनुरूपता के स्तर तक अमान्य माने जाएंगे।
2. राज्यों को ऐसा कोई कानून नहीं बनाना चाहिए जो कि इस भाग में प्रदत्त अधिकारों को वापस लेता हो अथवा उसका हनन करता हो और इस ध्येय का उल्लंघन करके बनाया गया कोई भी कानून उल्लंघन की सीमा तक अमान्य होगा।

3. धारा 368 के तहत संविधान के किसी संशोधन पर यह धारा लागू नहीं होगी।

भारत के संविधान में न्यायालयों को न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार इस प्रकार से दिया गया है, जिससे इसका लाभ प्राप्त किया जा सके एवं संयुक्त राज्य अमेरिका में इस प्रणाली से जो कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं उनसे बचा जा सके। हमारे देश में 'विधि की उचित प्रक्रिया' के स्थान पर 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' को स्वीकार किया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय संविधान का निर्माण करने वाले एक ओर तो न्यायालयों को स्पष्ट तरीके से न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार प्रदान करते हैं वहीँ दूसरी ओर उनके अधिकार को सीमित रखते हैं।

भारत में सर्वोच्च न्यायालय की स्थिति और न्यायिक समीक्षा की प्रकृति के संबंध में **दुर्गादास बसु** लिखते हैं,"न्यायिक सर्वोच्चता के स्थान पर हमारे संविधान में संवैधानिक सीमाओं के अंतर्गत विधायी सर्वोच्चता को स्वीकार किया गया है यद्यपि सर्वोच्च न्यायालय ऐसे नियम को रद्द कर देगा, जो संवैधानिक सीमाओं के प्रतिकूल है, परन्तु इसके द्वारा प्राकृतिक न्याय की धारणा या संविधान के आदर्शों के आधार पर व्यवस्थापिका द्वारा पारित अधिनियमों को रद्द या संशोधित नहीं किया जा सकता। भारत में न्यायपालिका की स्थिति इंग्लैंड और अमेरिका के बीच में ही है।"

भारत में न्यायिक समीक्षा की जो सीमाएं हैं, उनका उल्लेख **सीरवाई** के द्वारा अधिक भली–भांति किया गया है:"भारत में किसी कानून को केवल इस आधार पर अवैध घोषित नहीं किया जा सकता कि वह न्यायालय की सम्मति में स्वतन्त्रता या संविधान की भावना के किसी सिद्धान्त का अतिक्रमण करता है, जब तक कि वे सिद्धान्त संविधान में समाविष्ट न हों। किसी संविधि की संवैधानिकता पर निर्णय देते हुए न्यायालय को कानून की बुद्धिमता या बुद्धिहीनता, उसके न्याय या अन्याय से कोई सम्बन्ध नहीं है।"

अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय उसकी कानून की उचित प्रक्रिया वाली धारा के आधार पर लगभग 'एक तीसरा सदन या उच्च विधानमण्डल' (Super Legislature) बन गया है और न्यायाधीश हूज (Hughes) कहते हैं कि "हम एक संविधान के अन्तर्गत तो रहते हैं, लेकिन संविधान वैसा ही है, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय कहता है।" परन्तु हमारे देश में सर्वोच्च न्यायालय को निश्चित रूप से ऐसी स्थिति प्राप्त नहीं है। अमेरिका में जहां न्यायिक सर्वोच्चता को अपनाया गया है, भारत में न्यायिक सर्वोच्चता और विधायी सर्वोच्चता के बीच समन्वय स्थापित किया गया है।

हमारे देश में संविधान लागू होने के कुछ समय बाद ही संविधान की व्याख्या को लेकर न्यायिक पुनरावलोकन बनाम संसदीय प्रभुसत्ता विवाद प्रारंभ हो गया था। इस विवाद का एक प्रमुख पहलू संपत्ति के अधिकार के मायने तथा उसकी सीमाओं से संबंधित था। न्यायालय ने क्षतिपूर्ति के मायने पर बल दिया जिसके परिणामस्वरूप इसे बाजार मूल्य के रूप में माना गया। विख्यात गोलकनाथ मामले में न्यायपालिका द्वारा इस मुद्दे को अधिक गंभीरता से लिया गया जिसमें न्यायपालिका ने निर्णय दिया कि संसद को मौलिक अधिकारों में संशोधन करने का कोई अधिकार नहीं है। केशवानंद भारती केस में न्यायपालिका द्वारा दिया गया निर्णय बिल्कुल स्पष्ट था। इस बात

से सहमति व्यक्त करते हुए भी कि मौलिक अधिकारों को संशोधित किया जा सकता है, सर्वोच्च न्यायालय का मानना था कि संविधान की मूलभूत संरचना को संशोधित नहीं किया जा सकता। इसके पश्चात 42वां संविधान संशोधन किया गया, जिसका एक भाग मूल अधिकारों पर राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों को श्रेष्ठता प्रदान करता था, और इस प्रावधान ने इस मामले को न्यायपालिका के क्षेत्र से बाहर कर देने का प्रयास किया हालांकि सर्वोच्च न्यायालय ने मिनर्वा मिल्स केस (1980) में पुनः दोहराया कि संसद को संशोधन करने की निर्बाध शक्तियां प्राप्त नहीं हैं। इस प्रकार मूल अधिकारों का राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों पर वर्चस्व जारी रहा।

10.6 सारांश

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप समझ गए होंगे कि सरकार के तीन अंग, विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका, किसी न किसी तरह से नीति निर्माण प्रक्रिया में शामिल होते हैं। न्यायपालिका की भूमिका अनेक तरीकों से सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि यह विधानमंडल एवं स्थायी और राजनीतिक कार्यपालिका द्वारा निर्धारित की गयी सभी नीतियों को वैधता प्रदान करती है। देश के समक्ष उत्पन्न विभिन्न मुद्दों एवं समस्याओं से संबंधित नीतियों के निर्धारण के लिए यह सरकार पर प्रभाव डालती है। इसके अलावा न्यायपालिका ऐसी किसी भी नीति को अमान्य घोषित कर देती है जो संविधान की मूल प्रस्थापनाओं, लोगों के मूल अधिकारों और स्वतंत्रता तथा समाज द्वारा मान्यता प्राप्त सिद्धांतों और नैतिक मूल्यों के विरुद्ध जाती है।

10.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. न्यायपालिका से आप क्या समझते हैं ? भारतीय न्याय व्यवस्था एवं इसके स्वरुप को विस्तार से समझाइये।
2. न्यायपालिका के कार्यों का विश्लेषण कीजिए एवं नीति–निर्माण में न्यायपालिका की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
3. न्यायिक समीक्षा क्या है ? इसकी उपयोगिता को समझाइए।

बहुविकल्पीय प्रश्नः

1. भारतीय संविधान का संरक्षक किसे माना गया है ?

e. राष्ट्रपति को

f. उच्चतम न्यायलय को

g. संसद को

h. प्रधान मंत्री को

2. न्यायिक समीक्षा का सिद्धांत किस अमेरिकी न्यायाधीश ने प्रतिपादित किया?

a. 1803 ईस्वी में न्यायाधीश मार्शल ने

b. न्यायाधीश हूज (Hughes)ने

c. ब्राउन ने

d. पी. एन. भगवती ने

3. भारत में न्यायपालिका के शीर्ष पर कौन है?

a. उच्चतम न्यायालय

b. उच्च न्यायालय

c. संसद

d. राष्ट्रपति

4. लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था मूलतः किस पर टिकी है?

a. उच्चतम न्यायालय पर

b. निष्पक्ष एवं स्वतंत्र न्यायपालिका पर

c. भारतीय संविधान पर

d. जनभागीदारी पर

बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर:

2. (b)2.(a) 3. (a) 4. (b)

10.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. जौहरी जे.सी., 2022. भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन प्रकाशन आगरा।
2. सी. बी. गेना, 2010. तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएं, विकाश पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली।
3. सईद, एस. एम., 2021. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, भारत बुक सेंटर लखनऊ।
4. बसु दुर्गा दास, 2010. भारतीय संविधान का परिचय, प्रेंटिस हॉल नई दिल्ली।
5. शर्मा रश्मि, 2021. प्रशासन एवं लोकनीति : अवधारणा एवं सिद्धांत, साहित्य भवन प्रकाशन आगरा।

इकाई – 11 विभिन्न अंगों के बीच अन्योन्य–क्रिया

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 परिचय

11.2 राजनीतिक एवं स्थायी कार्यपालिका

11.3 राजनीतिक कार्यपालिका एवं संसद

11.4 स्थायी कार्यपालिका एवं संसद

11.5 न्यायपालिका एवं संसद

11.6 कार्यपालिका और न्यायपालिका

11.7 सारांश

11.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के पश्चात आप,

- राजनीतिक तथा स्थायी कार्यपालिका के बीच संबंधों के बारे में जान पाएंगे।
- नीति–निर्माण में संसद एवं स्थायी कार्यपालिका की भूमिका को भी समझ सकेंगे, साथ ही इनके अतःसंबंधों के बारे में भी ज्ञान प्राप्त करने में सक्षम होंगे।
- राजनीतिक कार्यपालिका एवं संसद के बीच संबंध के बारे में जानकारी प्राप्त करने में सक्षम होंगे।
- न्यायपालिका तथा संसद के पारस्परिक संबंधों को भी जान सकेंगे।

- कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच संबंधों को भी समझ सकेंगे।

11.1 परिचय

अपनी पिछली इकाइयों में, आपने नीति–निर्माण में राजनीतिक कार्यपालिका, अधिकारी तंत्र, विधानमंडल तथा न्यायपालिका की भूमिकाओं को समझा है। किसी देश के सामाजिक आर्थिक विकास में लोक नीतियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। लोक नीति का निर्माण सरकार का एक महत्वपूर्ण कार्य है। नीति–निर्माण प्रक्रिया में सरकार के विभिन्न अंग एवं अन्य गैर सरकारी माध्यम सशक्त भूमिका निभाते हैं। इस प्रक्रिया में उनकी संबंद्ध भूमिकाओं पर चर्चा करते समय, हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि सभी अंग नीतियां निर्धारित करने के लिए आपस में पारस्परिक अन्योन्य –क्रिया करते हैं। उनका सहयोग तथा एक दूसरे को प्रदान की जाने वाली सहायता एक स्वस्थ नीति निर्माण क्रिया विधि की पूर्व शर्त है। इन सरकारी अंगों के संचालन में हम पाते हैं कि इसमें टकराव के क्षेत्र सहयोग के क्षेत्र की तुलना में कहीं अधिक कम होते हैं और जब भी टकराव उत्पन्न होता है तो उन्हें शांतिपूर्वक सुलझाने का प्रयास किया जाता है। इस इकाई में नीति निर्माण में शासन के तीनों अंगों अर्थात विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच अंतःक्रिया का विश्लेषण किया गया है।

11.2 राजनीतिक एवं स्थायी कार्यपालिका

नीति–निर्माण लोक प्रशासन का केंद्रीय तत्त्व है। लोकतंत्र के तीन स्तम्भ– विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका में से कार्यपालिका सरकार का वह अंग है, जिसका कार्य विधायिका द्वारा पारित विधेयकों का क्रियान्वयन करना है। किसी भी देश में राजनीतिक कार्यपालिका लोक प्रशासन का शीर्षस्थ अभिकरण होती है। राजनीतिक अध्यक्ष के रूप में, यह सम्पूर्ण प्रशासन का निर्देशन, नियंत्रण तथा पर्यवेक्षण करती है। इसके द्वारा सभी प्रशासनिक अभिकरणों को नेतृत्व प्रदान किया जाता है। कार्यपालिका को हम दो अर्थों में प्रयुक्त करते हैं– पहला संकुचित अर्थ में, इसके अंतर्गत वे राजनीतिक अधिकारीगण आते हैं जिनका सम्बन्ध नीति निर्माण तथा उसके क्रियान्वयन से होता है। दूसरा व्यापक अर्थ में, कार्यपालिका के अंतर्गत वे सभी कर्मचारी व् अधिकारीगण आते हैं जिनका सम्बन्ध प्रशासन से होता है। इस संदर्भ में व्यापक चर्चा इकाई 7 एवं 8 में की जा चुकी है। राजनीतिक कार्यपालिका तथा स्थायी कार्यपालिका का लोक नीति निर्माण में संबंध परिमाणात्मक एवं गुणात्मक दोनों है। प्रशासन अनिवार्य रूप से कार्यपालिका से जुड़ा होता है। अतः कार्यपालिका नीति निर्माण से संबंधित जो भी कार्य करती है उसका आधार अधिकारी तंत्र ही होता है।

राजनीतिक कार्यपालिका वह समूह है जिसे जनता के प्रतिनिधि के रूप में जाना जाता है, जो एक निश्चित कार्यावधि के लिये जनता द्वारा चुने जाते हैं। राजनीतिक कार्यपालिका संसद के माध्यम से देश के लिये नीतियों की रूपरेखा पर निर्णय लेते हैं। वहीं स्थायी कार्यपालिका एक महत्वपूर्ण प्रशासनिक संगठन है। यह एक विशिष्ट राजनैतिक व्यवस्था के अन्तर्गत स्थायी कार्यकारी राजनीतिक निर्णयों को कार्यरूप में परिवर्तित करने का

एक साधन है। इसके द्वारा सरकार के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति होती है। इसका सम्बन्ध नागरिकों की समस्याओं का समाधान करने से हैं। स्थायी कार्यकारी प्रशासन एक सुनिश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिये परस्पर सहयोगी संगठन है, जो नागरिकों की सेवा के लिये सदैव तत्पर रहते हैं। स्थायी कार्यपालिका विश्वविद्यालयों, चिकित्सालयों, व्यापारिक क्षेत्रों तथा विभिन्न सरकारी विभागों में दिखाई देता है। यह राजनीतिक प्रक्रिया का भी विशिष्ट भाग है, क्योंकि प्रशासन राजनीतिज्ञों को नीति–निर्माण में भी अपनी सलाहकारी भूमिका अदा करते हैं।

पुलिस राज्य के स्थान पर कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के उदय होने से सरकार की गतिविधियों तथा दायित्वों में अप्रत्याशित वृद्धि देखने को मिली है। इसके परिणाम स्वरुप अधिकारी तंत्र अर्थात नौकरशाही को प्रशासन का अपरिहार्य तत्व बना दिया गया है। कार्यपालिका द्वारा निर्मित नीतियों को उसी रूप में क्रियान्वित करना नौकरशाही की जवाबदेही हो जाती है भले ही वह उससे सहमत हो या नहीं। अधिकारी तंत्र, सरकार द्वारा निर्मित कानून को लागू करता है और कार्यक्रमों को क्रियान्वित भी करता है। वर्तमान परिदृश्य में नीति निर्माण राजनीतिक कार्यपालिका का ही एकमात्र अधिकार क्षेत्र नहीं रहा। आज तकनीकी एवं वैज्ञानिक प्रगति के काल में स्थायी कार्यपालिका नीतियों के विकल्पों एवं आयामों के चयन में महत्वपूर्ण हो गयी है। यह राज्य की नीतियों को लागू कर उसके लक्ष्योंको साकार बनाती है एवं उसे सार्थकता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। राजनीतिक कार्यपालिका नीति–निर्माण के लिए काफी हद तक स्थायी कार्यपालिका पर ही निर्भर होती है। इस प्रकार स्थायी कार्यपालिका एवं राजनीतिक कार्यपालिका दोनों साथ मिलकर नीति निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और दोनों के बीच वैचारिक आदान–प्रदान होता है। परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि स्थायी कार्यपालिका राजनीतिक कार्यपालिका पर हावी हो जाती है, बल्कि प्रस्तावों को अंतिम रूप देने में दोनों एक साथ मिलकर काम करते हैं। नीति निर्माण के कार्य में दो महत्वपूर्ण गतिविधियां शामिल होती हैं। पहला, इस बात का निर्णय करना कि क्या करना है और दूसरा उसे कैसे करना है, पहले का संबंध राजनीतिक कार्यपालिका से तथा दूसरे का संबंध स्थायी कार्यपालिका से है। यह दोनों प्रकार के कार्यों में एक–दूसरे की मदद लेते हैं। स्थायी कार्यपालिका राजनीतिक कार्यपालिका के सीधे नियंत्रण में रहती है। अतः स्थायी कार्यपालिका विधायिका से अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ी होती है।

11.3 राजनीतिक कार्यपालिका एवं संसद

नीति निर्माण मुख्य तौर पर संसद का ही कार्य है, क्योंकि इसका प्रारूप एवं आधार संसद द्वारा ही निश्चित तथा निर्धारित होता है। संसद के समक्ष जो भी नीतिगत प्रस्ताव प्रस्तुत किये जाते हैं, संसद उन पर चर्चा एवं विश्लेषण करती है तथा इनको अंतिम रूप देती है। यदि कार्यों की प्रकृति एवं सार्वजानिक उत्तरदायित्व की दृष्टि से समझा जाये तो संसद तीनों अंगों में सर्वोच्च है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 79 के तहत राष्ट्रपति को संसद का अभिन्न अंग माना जाता है। संसद द्वारा पारित कोई भी विधेयक तब तक कानून नहीं बन सकता जब तक राष्ट्रपति उस पर अपनी सहमति न दे दे। हालाँकि राष्ट्रपति संसद के किसी भी सदन का सदस्य नहीं होता

है, फिर भी उसे संसद का सत्र बुलाने, उसे स्थगित करने और लोकसभा को भंग करने का अधिकार है। इतना ही नहीं, जब संसद के दोनों सदनों का सत्र नहीं चल रहा हो और राष्ट्रपति को महसूस हो कि इन परिस्थितियों में तत्काल कार्यवाही जरूरी है तो वह अध्यादेश जारी कर सकता है। इस अध्यादेश की शक्ति और प्रभाव संसद द्वारा पारित कानून के समान ही है। इसके अलावा राष्ट्रपति प्रत्येक लोकसभा के आम चुनाव के बाद सत्र की शुरुआत में प्रत्येक वर्ष के पहले सत्र के प्रारंभ में राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों को एक साथ संबोधित करता है।

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में शक्ति विभाजन का सिद्धांत प्रभावी है। भारतीय संविधान में विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के अधिकार क्षेत्र का स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है। इसके अनुसार कानून निर्माण विधायिका का कार्य है, इसे क्रियान्वित करना कार्यपालिका का तथा विधायिका द्वारा निर्मित कानून के संविधान सम्मत होने की जांच करना न्यायपालिका का कार्य है। आवश्यकता पड़ने पर संविधान में संशोधन भी किया जा सकता है और यह महत्त्वपूर्ण अधिकार विधायिका को प्राप्त है। हालाँकि न्यायपालिका के पास इसकी न्यायिक समीक्षा का अधिकार है। संसद के कार्यों में विविधता के साथ–साथ कार्यों की बहुलता भी है। चूँकि सीमित समय के कारण यह इसके समक्ष प्रस्तुत सभी महत्वपूर्ण विधायी अथवा अन्य विषयों पर गहन चर्चा नहीं कर पाता है। अतः संसद का अधिकांश कार्य समितियों द्वारा किया जाता है।

संसद और राजनीतिक कार्यपालिका के बीच इस संबंध का एक निर्णायक पक्ष मंत्रिमंडलीय दायित्व का प्रचलन है। भारत के संविधान अनुच्छेद 75(3) के तहत, मंत्रिमंडल संयुक्त रूप से संसद के प्रति उत्तरदायी है। जब तक कार्यपालिका को लोकसभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त रहता है, तब तक वह विधानमंडल को नियंत्रित करने की पात्रता रखती है। हालांकि मंत्रिमंडल की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है। सभी मंत्रियों को संसद का सदस्य होना चाहिए और यदि कोई मंत्री उसकी नियुक्ति के समय संसद का सदस्य ना हो तो उसे 6 महीने के भीतर संसद का सदस्य बनना होगा, अन्यथा वह मंत्री पद पर बना नहीं रह सकता। मंत्रिमंडल संसद की एक अन्य समिति है जिस पर सरकार के प्रशासनिक मामलों के संचालन की जिम्मेदारी होती है। यह संबंध ही है जो नीति–निर्माण में उनकी भूमिका को निर्णायक बनाता है तथा राजनीतिक कार्यपालिका पर संसदीय नियंत्रण की समुची प्रक्रिया को निश्चित करता है।

नीति निर्धारण के स्तर पर कार्यपालिका द्वारा इस पर विचार कर मूर्त रूप दिया जाता है। संसद की भूमिका तब शुरू होती है जब नीति की मंजूरी के लिए कोई प्रस्ताव रखा जाता है। इस प्रकार, मंत्रिमंडल और संसद आपस में घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। लेकिन फिर भी इनके कार्यों में स्पष्ट अंतर विद्यमान है। आम तौर पर यह कहा जा सकता है कि कार्यपालिका को नीतियों को आकार देने और उन्हें लागू करने के लिए आवश्यक कदम उठाने की व्यापक स्वतंत्रता है। संसद राजनीतिक कार्यपालिका से सूचनायें प्राप्त कर सकती है।

संसद का कार्य कानून का निर्माण करना, शासन पर संसदीय निगरानी रखना, नीतियां बनाना तथा वित्तीय नियंत्रण करना है। संसद के प्रमुख कार्यों में प्रशासन की देखरेख, सार्वजनिक शिकायतों की सुनवाई, बजट पारित

करना तथा विभिन्न विषयों जैसे विकास योजनाओं, अंतरराष्ट्रीय संबंध एवं राष्ट्रीय नीतियों पर चर्चा करना शामिल है। कुछ परिस्थितियों में संसद अनन्य रूप से राज्यों के लिए आरक्षित इसकी परिधि के अंतर्गत आने वाले किसी विषय के संबंध में विधायी शक्ति को अधिग्रहीत कर सकती है।

अन्य संसदीय लोकतंत्रों की भांति, भारत की संसद की विधायिका के मौलिक कार्य प्रशासन की देखभाल करना, जनता की शिकायतें सुनना, बजट पारित करना और विकास संबंधी योजनाओं, राष्ट्रीय नीति और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों जैसे विभिन्न मुद्दों पर चर्चा करना है। केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों का वितरण जैसा कि संविधान में कहा गया है, कई मायनों में विधायी क्षेत्र पर संसद का सामान्य प्रभुत्व है। विषयों की एक विस्तृत श्रृंखला के अलावा सामान्य समय में भी संसद कुछ निर्दिष्ट परिस्थितियों के तहत अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर उन विषयों के संबंध में विधायी अधिकार का प्रयोग कर सकती है, जो विशेष रूप से राज्यों के लिए आरक्षित हैं। सभी कानूनों को संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित किया जाना आवश्यक है। वित्त विधेयकों के संदर्भ में यद्यपि लोकसभा की इच्छा मानी जाती है। प्रदत्त विधायन की भी समीक्षा और नियंत्रण भी संसद द्वारा किया जाता है।

कार्यपालिका पर संसद का नियंत्रण बनाए रखने के लिए कुछ अन्य विशिष्ट प्रक्रियात्मक तरीके हैं, जैसे सदन के पटल पर दस्तावेजों का प्रस्तुत किया जाना, प्रश्नकाल, ध्यानाकर्षण प्रस्ताव, आधे घंटे की बहस, काम रोको प्रस्ताव, अल्पकालिक चर्चा इत्यादि शामिल है। यहां इन पर संक्षिप्त चर्चा करना आवश्यक है। जैसा कि हम जानते हैं प्रशासन, पटल पर दस्तावेजों को प्रस्तुत करके संसद के लिए सूचनाएं उपलब्ध कराता है। चूँकि इस प्रकार से प्रस्तुत किए गए दस्तावेज तुरंत लोक–दस्तावेज बन जाते हैं, और उन पर सदन में चर्चा भी हो सकती है। अतः प्रशासन को दस्तावेज तैयार करते समय काफी सतर्कता बरतनी होती है। वे संसदीय प्रश्न जिन्हें जवाब के लिए पटल पर रखा जाता है, ऐसे महत्वपूर्ण साधन है जिनके जरिए सदन के पटल पर सरकार से सूचनाएं मांगी जाती हैं। प्रश्नकाल के दौरान प्रशासन अपनी कार्यवाहियों या निष्क्रियताओं के लिए संसद के सदस्य के प्रति जवाबदेह है और कई बार कुछ महत्वपूर्ण मसलों में प्रशासन को भविष्य की प्रस्तावित कार्य योजना की व्याख्या भी प्रस्तुत करनी पड़ती है। प्रश्नकाल के दौरान प्रशासन के सभी पहलू संसद की कड़ी निगरानी में रहते हैं। यहां तक कि संबंधित मंत्री को पूरक प्रश्नों के माध्यम से सदन के पटल पर खड़ा किया जा सकता है, जो जानकारी प्राप्त करने के कार्य में सरकार की कमियों को खोजने के लिए भी उन्मुख हो सकते हैं।

11.4 स्थायी कार्यपालिका एवं संसद

नीति निर्माण की प्रक्रिया में संसद, राजनीतिक कार्यपालिका और स्थायी कार्यपालिका एक–दूसरे के साथ घनिष्ठ रूप से अन्योन्य क्रिया करते हैं। इसलिए, यहां यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि संसद और कार्यपालिका के बीच संबंध को केवल संसद और राजनीतिक कार्यपालिका तथा संसद एवं स्थायी कार्यपालिका के बीच ही विभाजित करके चर्चा नहीं की जा सकती है। स्थायी कार्यपालिका नीतिगत मुद्दों की पहचान करने और उन्हें नीतिगत मुद्दों के रूप में ठोस बनाने की अपनी भूमिका निभाने में राजनीतिक कार्यपालिका की सहायता करती

है। वस्तुतः नीति वह साधन या माध्यम है जिसकी सहायता से लक्ष्य प्राप्त किये जाते हैं। संसद, राजनीतिक और स्थायी कार्यपालिका के साथ मिलकर, नीतियों के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। **पीटर एम. बॉल्वो** के शब्दों में, ''नौकरशाही प्रशासन को अधिक कुशल, विवेकपूर्ण, निष्पक्ष और तर्कसंगत बनाती है। नौकरशाही के बिना प्रशासन शून्य हो जाएगा।'' जर्मन विचारक मैक्स वेबर ने नौकरशाही को आदर्श प्रकार माना है।

नीति निर्माण में राजनीतिक कार्यपालिका और संसद, स्थायी कार्यपालिका यानी नौकरशाही की राय से प्रभावित होती है। नौकरशाही नीतियों के निर्माण के लिए सभी प्रारंभिक जानकारी प्रदान करती है। नौकरशाही जनता से उनकी स्वीकार्यता, प्रारंभिक जानकारी आदि पहलुओं के संबंध में जानकारी एकत्र करती है। दूसरी ओर, संसद का गठन आम तौर पर कानून बनाने के लिए होता है, लेकिन इसके अलावा भी संसद के कई कार्य हैं और इसकी शक्तियां भी व्यापक हैं। आधुनिक समय में राज्य का शायद कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जहाँ संसद या विधानमंडल का प्रभाव या सम्बन्ध न हो। संसद के प्रमुख कार्यों में प्रशासन की देखरेख, सार्वजनिक शिकायतों की सुनवाई, बजट पारित करना, राष्ट्रीय नीतियों पर चर्चा करना आदि शामिल है। कुछ परिस्थितियों में संसद अनन्य रूप से राज्यों के लिए आरक्षित इसकी परिधि के अंतर्गत आने वाले किसी विषय के संबंध में विधायी शक्ति को अधिग्रहीत कर सकती है।

लोगों के सामाजिक और आर्थिक कल्याण के क्षेत्र में सरकार के कार्यों में वृद्धि के कारण सरकार की जिम्मेदारियों में भारी वृद्धि हुई है और इसके कारण इसके अधीन काम करने वाले कर्मचारियों का काम भी बढ़ गया है। सरकारी तंत्र एवं नौकरशाही जटिल तथा अत्यंत विकराल हो गयी है। इसके फलस्वरुप मंत्रिमंडल की जिम्मेदारियां बढ़ गई है। दूसरी ओर, इससे संसदीय कामकाज भी बढ़ गया है। चूंकि प्रशासन द्वारा की गई किसी भी विफलता, देरी, त्रुटि या अनियमितता के लिए मंत्री को जिम्मेदार ठहराया जाता है, इसलिए स्थायी कार्यकारी पर बोझ बढ़ गया है। उसे सावधान, चौकन्ना, सतर्क, ईमानदार तथा कार्य कुशल रहना चाहिए।

संसद प्रत्यायोजित विधायन के माध्यम से स्थायी कार्यपालिका के साथ अन्योन्य–क्रिया करती है। भारत में प्रत्यायोजित विधान का महत्व बढ़ गया है, जिसके निम्नलिखित कारण हो सकते हैं–

i) संसद के पास समय की अपर्याप्तता

आधुनिक कल्याणकारी राज्यों की सामाजिक–आर्थिक भूमिका लगातार बढ़ रही है। इसलिए, विधायिका को समय और दक्षता की कमी का सामना करना पड़ता है। अतः किसी विधेयक के केवल मूल सिद्धांत ही संसद द्वारा तैयार किए जाते हैं और विधेयक को विस्तृत करने और अध्ययन करने का कार्य कार्यपालिका या किसी अधीनस्थ को सौंप दिया जाता है।

ii) लचीलापन सुनिश्चित करने की आवश्यकता

स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप तेजी से समायोजन की अनुमति देने की आवश्यकता के परिणामस्वरूप कार्यपालिका को विधायी शक्तियां सौंपी जाती हैं।

iii) विषय वस्तु का तकनीकी एवं वैज्ञानिक चरित्र

चूंकि संसद आम आदमी का निकाय है, इसलिए यह नीतियों को रेखांकित करने वाले वैज्ञानिक और तकनीकी पहलुओं को तय करने में सक्षम नहीं है, लेकिन ऐसे मामले संसदीय कानूनों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। चूँकि संसद तकनीकी बारीकियों को तय करने के लिए एक उचित निकाय नहीं है। इसलिए यह उन्हें कार्यपालिका को सौंप देता है।

iv) अप्रत्याशित आकस्मिकताओं के लिए प्रावधान की आवश्यकता

सरकार के समक्ष जब कोई आकस्मिक कार्य आ जाता है तो तत्काल कार्यवाही करने की आवश्यकता होती है। ऐसी स्थिति में संसद द्वारा कानून पारित करने तक प्रतीक्षा नहीं की जा सकती है। यह न तो व्यावहारिक है और न ही विवेकपूर्ण। इसलिए, इसके परिणामस्वरुप संसद विधानमंडलीय शक्तियां कार्यपालिका को सौंप देती है। प्रत्यायोजित विधान समय की मांग बन चुके हैं।

11.5 न्यायपालिका एवं संसद

भारतीय संविधान लागू होने के बाद देश में न्याय प्रशासन का एक नया दायित्व सामने आया। राज्य का एक महत्वपूर्ण कार्य समाज में न्याय की स्थापना माना जाने लगा। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में शक्ति पृथक्करण का सिद्धांत लागू होने के कारण संविधान में विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के अधिकार क्षेत्र की स्पष्ट लक्ष्मण रखा खींच दी गयी है। इसके अनुसार कानून निर्माण विधायिका का कार्य है, इसे क्रियान्वित करना कार्यपालिका का तथा विधायिका द्वारा निर्मित कानून के संविधान सम्मत होने की जांच करना न्यायपालिका का कार्य है। नीति निर्माण में न्यायपालिका का विशेष महत्व है। संघात्मक शासन व्यवस्था में इसकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। इसकी भूमिका को इंगित करने वाले कार्य कुछ इस प्रकार हैं – जैसे संविधान की रक्षा, कानून की व्याख्या, कानून निर्माण परामर्श सम्बन्धी एवं प्रशासकीय कार्य, विवादों पर निर्णय आदि। हमारे देश में विधानमंडल मात्र उन्ही विषयों पर कानून बना सकता है जो कि संविधान द्वारा उसे सौंपे गए हैं, और यदि वे इसके विपरीत किसी कानून का निर्माण करते हैं तो न्यायपालिका ऐसे कानून को असंवैधानिक करार कर सकती है। संविधान में संशोधन करने का अधिकार विधायिका को प्राप्त है।

संसद, नीतियां बनाते समय न्यायिक घोषणाओं और आदेशों को ध्यान में रखती है। संसद के संदर्भ में न्यायपालिका की भूमिका के तीन कारक हैं : पहला, संसदीय कानूनों की व्याख्या करना, कानूनों में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ प्रदान करना और रिक्त स्थानों की पूर्ति करना। दूसरा, न्यायपालिका की किसी भी कानून को असंवैधानिक घोषित करने की शक्ति और तीसरा, संवैधानिक संशोधनों को अवैध घोषित करने की न्यायालयों की शक्ति।

कानूनों की वैधता की जांच करने की न्यायपालिका की शक्ति दो कारकों पर निर्भर करती है: पहला, यह कि उसके पास किसी ऐसे व्यक्ति को निवारण प्रदान करने की शक्ति होनी चाहिए जो किसी कानून की वैधता को चुनौती देने के लिए अदालतों का रुख करता है, और दूसरा, संवैधानिक प्रावधानों की भाषा और आयाम जिनके

खिलाफ कानून की वैधता को चुनौती दी गई है, उसकी जांच की जानी होती है। पहले कारक के सन्दर्भ में, भारत के संविधान में ही मुद्दे को विधायिका की इच्छा पर छोड़ने के बजाय न्यायिक समाधान शामिल हैं। यह मुख्य रूप से धारा 32 और 226 में निर्धारित है। धारा 32 सर्वोच्च न्यायालय को मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन और अन्य उद्देश्यों के लिए विशेषाधिकार याचिका जारी करने का अधिकार देती है। इस प्रकार, मौलिक अधिकारों के संदर्भ में किसी भी कानून की वैधता को चुनौती देने वाला कोई भी व्यक्ति या तो उच्च न्यायालय या सीधे सर्वोच्च न्यायालय जा सकता है।

1973 में केशवानंद भारती मामले में सर्वोच्च न्यायालय की 13 न्यायाधीशों की सबसे बड़ी संविधान पीठ ने अपने फैसले में साफ कर दिया था कि भारत में संसद नहीं बल्कि संविधान सर्वोच्च है। टकराव की स्थिति को समाप्त करने के लिए न्यायपालिका ने संविधान के मूल ढांचे का सिद्धांत भी पारित किया। इसमें कहा गया कि संसद ऐसा कोई संशोधन नहीं कर सकती जो संविधान के मौलिक ढांचे को पूरी तरह प्रभावित करता हो और न्यायिक समीक्षा की शक्ति के तहत न्यायपालिका यह भी जांच कर सकती है कि संसद द्वारा किए गए संशोधन से संविधान की मूल संरचना प्रभावित होती है या नहीं। संविधान की सर्वोच्चता, सरकार की गणतांत्रिक प्रणाली, संविधान की संघीय और पंथनिरपेक्ष प्रकृति, राष्ट्र की संप्रभुता, मौलिक अधिकारों के माध्यम से मानव गरिमा की रक्षा, कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका के बीच शक्तियों का विभाजन, संविधान के भाग 4 में वर्णित लोक कल्याणकारी राज्य बनाने का संकल्प और भारत की एकता व अखंडता संविधान के मूल ढांचे के कुछ उदाहरण हैं।

भारतीय संविधान लागू होते ही न्यायिक पुनरावलोकन और संसदीय संप्रभुता संबंधी विवाद सामने आने लगे। यह संकट विभिन्न सरकारों में जारी रहा। परिणामस्वरूप मौलिक अधिकारों बनाम राज्य के नीति–निर्देशक सिद्धांतों की प्राथमिकता का मुद्दा सुर्खियों में बना रहा। भारतीय संविधान में न्यायालयों को न्यायिक समीक्षा का अधिकार इस प्रकार दिया गया है कि इससे होने वाले लाभ तो प्राप्त किये जा सकें परन्तु अमेरिका में इसकी व्यवस्था के कारण जो कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं उन कठिनाइयों से बचा जा सके। भारत में कानून की 'उचित प्रक्रिया' के स्थान पर 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' को स्वीकार किया गया है। यह स्पष्ट है कि भारत के संविधान निर्माता एक ओर तो स्पष्ट रूप से न्यायालय को न्यायिक समीक्षा की शक्ति प्रदान करते हैं, वहीं दूसरी ओर उनके अधिकार को सीमित रखते हैं।

11.6 कार्यपालिका और न्यायपालिका

जैसा कि हमने पिछले भाग में पढ़ा, न्यायपालिका द्वारा किसी भी कानून में प्रयुक्त शब्दों का अर्थ प्रदान किया जाता है। न्यायपालिका किसी भी कानून को असंवैधानिक घोषित कर सकती है और संवैधानिक संशोधन को रद्द कर सकती है। इस संदर्भ में न्यायपालिका और कार्यपालिका के बीच संबंध भी बहुत महत्वपूर्ण है। लोकतंत्र के तीनों स्तंभ विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका की स्थिति और प्रकृति एक जैसी नहीं है। इन तीनों का

स्थान एक समानान्तर तल पर नहीं है। न्यायपालिका का स्थान विधायिका और कार्यपालिका से बिल्कुल अलग है। वस्तुतः लोकतांत्रिक शासन प्रणालियाँ स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका पर ही टिकी होती हैं। नागरिकों की स्वतंत्रता की रक्षा करने वाली एकमात्र संरचना होने के कारण इसका महत्व आम लोगों के लिए अधिक है। जाहिर है इससे न्यायपालिका का महत्व बढ़ जाता है। संघीय व्यवस्था का सफल संचालन न्यायपालिका की कार्य क्षमता पर निर्भर करता है।

संसदीय लोकतंत्र के कारण कार्यपालिका के कार्यों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है, वहीं हाल के वर्षों के विकास से इसके कार्यों में वृद्धि हो रही है। संविधान के अनुच्छेद 122 में प्रावधान है कि संसद अपने कार्य के लिए स्वतंत्र है और अदालत इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकती, परंतु यह कौन देखेगा कि संसद और सांसद संवैधानिक मर्यादाओं का पालन करते हुए अपनी शक्तियों का उपयोग कर रहे हैं या नहीं। यह शक्ति केवल न्यायपालिका के पास है। संविधान के अनुच्छेद 132 के अनुसार संवैधानिक प्रावधानों की व्याख्या करने का अधिकार केवल सर्वोच्च न्यायालय को है। प्रशासनिक न्यायाधिकरण की स्थापना ने कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच संबंधों को एक नया आयाम दिया है। यदि न्यायालय अपनी संवैधानिक जिम्मेदारियों के निर्वहन में संसद और सांसदों के अनैतिक निर्णयों पर अंकुश लगाता है तो यह टकराव नहीं बल्कि समाज की विधि एवं नैतिक व्यवस्था की दिशा में एक प्रशंसनीय कदम है।

11.7 सारांश

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि लोकतंत्रीय व्यवस्था तीनों अंगों अर्थात विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के समन्वय से चलती है। लोकतंत्र का पहला पाठ ही व्यवस्था के तीन अंगों विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के समन्वय से शुरू होता है। नीति–निर्धारण में ये तीनों अंग घनिष्ट रूप से आपस में अन्योन्य क्रिया करते हैं और प्रत्येक अंग की सम्बद्ध भूमिकाएँ होती हैं। जहाँ राजनीतिक कार्यपालिका उन नीति प्रस्तावों पर पहल करती है जो अनुमोदन के लिए विधायिका के समक्ष प्रस्तुत किए जाते हैं, जबकि न्यायपालिका के पास उन्हें असंवैधानिक घोषित करने का अधिकार है। निर्धारित एवं स्वीकृत की गयी नीतियां स्थायी कार्यपालिका द्वारा लागू की जाती हैं।

11.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. राजनीतिक एवं स्थायी कार्यपालिका से आप क्या समझते हैं ?
2. राजनीतिक कार्यपालिका एवं संसद के बीच संबंधों पर प्रकाश डालिए।
3. स्थायी कार्यपालिका एवं संसद के पारस्परिक संबंधों का विश्लेषण कीजिए।
4. न्यायपालिका एवं संसद के संबंधों का मूल्यांकन कीजिए।
5. कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के संबंधों पर चर्चा कीजिये।

बहुविकल्पीय प्रश्न:

1. मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से किस सदन के प्रति उत्तरदायी होती है?
    a. लोकसभा
    b. राज्यसभा
    c. संसद
    d. विधानमंडल
2. संविधान का संरक्षक किसे माना गया है?
    a. राष्ट्रपति को
    b. संसद को
    c. सर्वोच्च न्यायलय को
    d. प्रधान मंत्री को
3. प्रशासन अनिवार्य रूप से शासन के किस अंग से जुड़ा होता है?
    a. न्यायपालिका से
    b. कार्यपालिकासे
    c. विधायिका से
    d. कार्यपालिका व विधायिका दोनों से
4. मंत्रिपरिषद का अध्यक्ष कौन होता है?
    a. राष्ट्रपति
    b. लोकसभा अध्यक्ष
    c. उपराष्ट्रपति
    d. प्रधानमंत्री

बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर:

1. (a) 2. (c) 3. (b) 4. (d)

11.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. जौहरी जे.सी., 2022. भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन प्रकाशन आगरा।
2. सी. बी. गेना, 2010. तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएं, विकाश पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली।
3. सईद, एस. एम., 2021. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, भारत बुक सेंटर लखनऊ।
4. बसु दुर्गा दास, 2010. भारतीय संविधान का परिचय, प्रेंटिस हॉल नई दिल्ली।
5. शर्मा रश्मि, 2021. प्रशासन एवं लोकनीति : अवधारणा एवं सिद्धांत, साहित्य भवन प्रकाशन आगरा।

इकाई – 12 – भारत में नीति–निर्माण प्रक्रिया : बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम 1975 का विषय परीक्षण

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 परिचय

12.2 बंधुआ मजदूरी का अर्थ

12.3 भारत में बंधुआ मजदूरी प्रथा

12.4 बंधुआ मजदूरी प्रथा उन्मूलन के प्रयास—स्वतंत्रता पूर्व काल

12.5 स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात बंधुआ मजदूरी प्रथा के समापन हेतु प्रमुख प्रयास

12.6 सारांश

12.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के पश्चात आप,

- बंधुआ मजदूरी के अर्थ को समझ पाएंगे।
- भारत में बंधुआ मजदूरी प्रथा पर प्रकाश डालने में सक्षम हो जायेंगे।
- स्वतंत्रता पूर्व एवं स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात के काल में बंधुआ मजदूरी प्रथा उन्मूलन के लिये किये गए प्रयासों पर चर्चा कर सकेंगे।
- बंधुआ मजदूरी प्रथा के उन्मूलन के मार्ग को प्रशस्त करने वाले कारकों का वर्णन कर पाएंगे।

12.1 परिचय

भारत में बंधुआ मजदूरी की प्रथा आजादी से पहले से ही मौजूद है। आजादी से पहले और आजादी के बाद इस अमानवीय प्रथा को खत्म करने के लिए काफी प्रयास किये गये। भारत सरकार ने देश में बाध्य श्रम के मुद्दे पर लगातार सख्त रुख अपनाया है। वह इस अत्याचार को इससे प्रभावित नागरिकों के मौलिक मानवाधिकारों का उल्लंघन मानता है और कम से कम समय में इसके पूर्ण समापन को लेकर अडिग है। प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत बंधुआ मजदूरी की प्रथा के अर्थ को समझाने का प्रयास किया गया है तथा इसके उन्मूलन हेतु अब तक किये गये प्रयासों की चर्चा की गयी है।

12.2 बंधुआ मजदूरी का अर्थ

पूरे विश्व में आज भी लगभग तीन करोड़ लोग गुलामी की जिंदगी जीने को मजबूर हैं और इनमें से लगभग आधे लोग भारतीय हैं। एक तरफ जहां पश्चिम अफ्रीका और दक्षिण एशिया में आज भी कुछ लोग पैदा होते ही गुलाम बन जाते हैं, वहीं भारत समेत अन्य गरीब देशों में बंधुआ मजदूरी, बाल मजदूरी, वेश्यावृत्ति और जबरन विवाह के जरिए गुलामी की जाती है। वह व्यक्ति जो लिए गए ऋण को चुकाने के बदले में ऋणदाता के लिए काम करता है या सेवाएं प्रदान करता है, बंधुआ मजदूर (Bounded Labour) कहलाता है। इसे 'अनुबंध श्रमिक' या 'बंधुआ मजदूर' भी कहा जाता है। कई बार ऐसा भी देखा गया है कि बंधुआ मजदूरी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चलती रहती है। ऐसे श्रमिकों द्वारा किये गये कार्यों को ही बंधुआ मजदूरी कहा जाता है।

बंधुआ मजदूरी आमतौर पर कर्ज चुकाने के साधन के रूप में की जाती है। जब बारीकी से विश्लेषण किया जाता है, तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस अमानवीय प्रथा का उपयोग वास्तव में शोषक जमींदारों और साहूकारों द्वारा अवैतनिक श्रम से लाभ उठाने की एक चाल के रूप में किया गया है। यदि हम बंधुआ मजदूरी के इतिहास को खंगालें तो प्राचीन यूनान में बंधुआ मजदूरी काफी हद तक प्रचलित थी। वर्तमान समय में बंधुआ मजदूरी सबसे ज्यादा दक्षिण एशिया में होती है। एशिया में लगभग दस प्रतिशत जबरन श्रम का उपयोग व्यावसायिक यौन शोषण के लिए किया जाता है। मानव तस्करी शायद जबरन श्रम का सबसे सनसनीखेज पहलू है, जिसमें काफी भिन्नता के साथ आर्थिक शोषण के लिए लोगों को एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाया जाता है।

संक्षेप में, आंकड़ों से पता चलता है कि तस्करी के शिकार अधिकांश लोग संक्रमण कालीन और विकसित देशों या क्षेत्रों में काम करने के लिए मजबूर हैं। इनमें से लगभग आधे लोगों की तस्करी यौन शोषण के लिए की जाती है। इस प्रकार का शोषण केवल विकासशील देशों या पारंपरिक व्यवस्थाओं तक ही सीमित नहीं है। बंधुआ मजदूरी को समाप्त करने के उद्देश्य से भारत में वर्ष 1976 में एक कानून बनाया गया और बंधुआ मजदूरी को अवैध घोषित कर दिया गया। इस कानून के बाद बंधुआ मजदूरी को दंडनीय अपराध माना जाने लगा। इस

अधिनियम के लागू होने से प्रत्येक श्रमिक को बेगारी करने की बाध्यता से मुक्ति मिल गयी है। यह कानून सभी राज्यों में लागू भी हो चुका है।

12.3 भारत में बंधुआ मजदूरी प्रथा

भारत के कृषि क्षेत्र में बंधुआ मजदूरों की सबसे अधिक संख्या देखने को मिलती है।ये श्रमिक अपनी आय का बड़ा हिस्सा कृषि गतिविधियों में अपनी श्रम शक्ति बेचकर कमाते हैं। वे मूलतः भूस्वामियों द्वारा उपलब्ध कराये गये रोजगार के अवसरों पर निर्भर रहते हैं। जमींदारों पर निर्भरता के कारण ये मजदूर अनेक सामाजिक एवं आर्थिक अपंगताओं के शिकार बने रहते हैं। एक स्वतंत्र श्रमिक वह है जो नियोक्ता द्वारा दी गई शर्तों और वेतन को स्वीकार या अस्वीकार करने में सक्षम है। बंधुआ मजदूरी की प्रथा तब उत्पन्न होती है, जब उच्च ब्याज दरों पर नकद या अग्रिम रूप से लिए गए ऋण को चुकाने के लिए, उधारकर्ता को नाममात्र वेतन पर या बिना किसी वेतन के कुछ काम तब तक करने के लिए मजबूर किया जाता है जब तक कि ऋण चुकाया न जाए। कर्ज चुकाने के बजाय बढ़ता जाता है और कर्जदार व्यक्ति तथा कभी–कभी तो उसका परिवार भी जिंदगी भर के लिए फंस जाता है। इस प्रथा ने भूस्वामियों को एक सुरक्षित श्रम आपूर्ति प्रदान की।

बंधुआ मजदूरी को देश के अलग–अलग हिस्सों में अलग–अलग नामों से जाना जाता है। महाराष्ट्र में वैट और बेगार प्रथा देखने को मिलती है। आंध्र प्रदेश में इसे भागेला, कोची, वेट्टी, कासिगल के नाम से जाना जाता है। बिहार में कमाऊती, सौरकिया, कामिया, रामासिया, तथा जनौरी के रूप में। कर्नाटक में जीथा प्रथा विद्यमान है। गुजरात में हाली और हलपति प्रथाएं हैं। केरल में यह प्रथा वाल्लोरकाजू, पानम, निलपू पानम तथा आदिम के रूप में विद्यमान है। मध्य प्रदेश में हरवाही, माहिदार, कबाड़ी, हाली तथा कामियां प्रथाएं रही हैं। राजस्थान में सागरी प्रथा, तमिलनाडु में बैठ्ठी, पाण्डयाल तथा चारमा प्रथा थीं। पंजाब में सेपी प्रथा थी। उड़ीसा में गोधी प्रथा विद्यमान थी। उत्तर प्रदेश में माट, खंडित–मंडित, लाग–बांग, संजायत, बरवाही, हरिया एवं सेवक प्रथाएं विद्यमान थीं। पश्चिम बंगाल में चाकर एवं हाली प्रथाएं प्रचलित थीं।

बंधुआ मजदूरी का जो नया रूप सामने आया है, उसमें सबसे बड़ा हिस्सा प्रवासी मजदूरों का है। मजदूरों को काम पर लगाने वाले दलाल लोगों को शुरुआत में थोड़ी सी रकम अग्रिम राशि देकर कानूनी तौर पर अपना कर्जदार बना लेते हैं। पैसे के जाल में फंसकर मजदूर अपने मालिक या इन दलालों का गुलाम बन जाता है। अधिकांश मामलों में, ये दलाल संबंधित उद्योगों की नजर में श्रम ठेकेदार होते हैं और श्रमिकों को श्रम कीमतों के भुगतान में विभिन्न प्रकार की हेराफेरी करते हैं। नियोक्ता और श्रमिक के बीच बिचौलियों की इतनी महत्वपूर्ण उपस्थिति श्रमिकों के शोषण को और अधिक गंभीर बना देती है। यहां तक कि कई बार माता–पिता द्वारा लिया गया कर्ज नहीं चुका पाने के कारण उनके बच्चों से सिर्फ भोजन के बदले बंधुआ मजदूर के रूप में काम करवाया जाता है। बंधुआ मजदूरी का यह चलन किसी एक देश तक सीमित नहीं है। खाड़ी देशों में, हजारों भारतीय और दक्षिण पूर्व एशियाई नौकरों के रूप में लगभग बंधुआ मजदूर की तरह काम कर रहे हैं। नौकरी पर रखने वाले

लोग या दलाल उनके सभी महत्वपूर्ण दस्तावेज जैसे वीजा, पासपोर्ट आदि या तो अपने पास रख लेते हैं या उन्हें नष्ट कर देते हैं। इस तरह लाखों लोग कभी रोजगार के नाम पर तो कभी लोन के नाम पर ठगे जाते हैं और जीवन भर बंधुआ मजदूर बनने को मजबूर हो जाते हैं।

12.4 बंधुआ मजदूरी प्रथा उन्मूलन के प्रयास–स्वतंत्रता पूर्व काल

आजादी से पहले बंधुआ मजदूरी की प्रथा को खत्म करने के लिए कई प्रयास किए गए और इस संबंध में कई कानून पारित किए गए। उन कानूनों की मुख्य विशेषताएं नीचे दी गई हैं:

1. उड़ीसा कमाऊती समझौता अधिनियिम 1920 इस अधिनियम के अंतर्गत यह स्पष्ट रूप से घोषित किया गया कि निम्नलिखित प्रकार की व्यवस्थाएँ अमान्य होंगीः

a) जब तक समझौते की कुल अवधि सीलबंद दस्तावेजों में न बताई गई हो,

b) जब तक श्रमिक (बंधुआ मजदूर) को दस्तावेज की एक प्रति नहीं दी जाती है,

c) जब तक कि कामगार (बंधुआ मजदूर) को दस्तावेज की एक प्रतिलिपि न दी गई हो,

d) यदि समझौते की अवधि एक वर्ष से अधिक हो गई है या अधिक होने की संभावना है,

e) जब तक कि समझौते की अवधि समाप्त होने तक कामगार के दायित्व पूरी तरह समाप्त नहीं हो जाते, और

f) जब तक कि समझौते के तहत कामगार की जिम्मेदारियाँ न्यायसंगत न हों और वेतन उचित न हो।

2. मद्रास एजेंसी ऋण बंधन उन्मूलन अधिनियम 1940

a) इस कानून के लागू होने के बाद किए गए श्रम समझौते पूरी तरह से अमान्य हो जाएंगे,

b) किसी भी वैध श्रम समझौते के तहत श्रम करने के सभी दायित्व उन समझौतों में निर्दिष्ट अवधि की समाप्ति पर समाप्त हो जाएंगे।

c) किसी श्रमिक द्वारा किया गया संपार्श्विक समझौता अमान्य होगा।

d) एक मजदूर को देय राशि में से बकाया राशि का भुगतान करके श्रम करने के दायित्व से मुक्त होने की स्वतंत्रता होगी।

e) अमान्य अनुबंध के तहत मजदूरों को नियोजित करने के लिए रु. 200 रुपये तक जुर्माना या जुर्माना न देने पर छह महीने की सजा।

f) यदि कोई भी मालिक कानून लागू होने के बाद किए गए समझौते की एक प्रति अधिकृत अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत करने में विफल रहता है तो वह दंड का भागी होगा।

g) इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, राज्य सरकार श्रमिकों के देय न्यायोचित एवं अनुकूल वेतन निर्धारित कर सकती है।

h) इस अधिनियम के द्वारा या इसके तहत दंडनीय अपराध की सुनवाई एजेंसी डिविजनल अधिकारी से

निचली अदालत में नहीं की जा सकती है और किसी भी सिविल अदालत को इस अधिनियम के तहत उत्पन्न होने वाले किसी भी मुद्दे को सुनने का अधिकार नहीं है।

3. हैदराबाद भागेला समझौता अधिनियम, 1943

इस अधिनियम में भागेलाओं और किसानों के बीच एक समझौते के कार्यान्वयन का प्रावधान किया गया है और भागेलाओं के शोषण को समाप्त करने की दृष्टि से कुछ प्रतिबंध लगाता है। अधिनियम में प्रावधान किया गया कि समझौते की शर्तों को दर्ज किया जाना चाहिए और 12 वर्ष से कम उम्र की बंधुआ मजदूरी पर पूर्णतः प्रतिबंध लगा दिया गया। अधिनियम के प्रमुख प्रावधान इस प्रकार हैं:

- धारा 4 में प्रावधान है कि भागेला समझौते की शर्तों को विधिवत मुद्रांकित फॉर्म में दर्ज किया जाना चाहिए और फॉर्म की एक प्रति निष्पादक को दी जानी चाहिए। पुनः सेवा की निर्धारित अवधि एक वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए और इस अवधि की समाप्ति पर अनुबंध से उत्पन्न सभी दायित्वों को खारिज माना जाना चाहिए। पुनः वेतन उचित होना चाहिए।
- अधिनियम की धारा 5 में भागेला समझौते के तहत लिये जाने वाले ब्याज की दर 6 प्रतिशत प्रति वर्ष निर्धारित की गई।
- धारा 6 में प्रावधान है कि भागेला या निष्पादक की मृत्यु पर समझौता रद्द हो जाना चाहिए। श्रम के निष्पादन की जिम्मेदारी मृतक के किसी भी उत्तराधिकारी या संपत्ति पर जारी नहीं रहनी चाहिए।

इन सभी अधिनियमो में आम तौर पर यह प्रावधान किया जाता है कि कोई भी समझौता, मूल या लिखित या आंशिक रूप से मौखिक और आंशिक रूप से लिखित, जिसमें श्रम के प्रदर्शन पर आकस्मिक अग्रिम, ऋण या ब्याज शामिल है, को अवैध माना जाएगा यदि वह दो वर्ष की अवधि से अधिक है एवं उसमें उचित और न्यायसंगत वेतन दरों को प्रतिबिंबित नहीं किया गया है। इन अधिनियमों में यह भी प्रावधान है कि ऐसे समझौते लिखित और पंजीकृत होने चाहिए और उसकी एक प्रति निष्पादक को दी जानी चाहिए। कानूनी प्रतिबंधों के बावजूद भी यह प्रथा जारी रही, जिसके मुख्य कारण इस प्रकार हैं:

- कृषि मजदूरों के कुछ समूहों की सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों के लिए सामान्य स्रोतों से धन प्राप्त करने में असमर्थता।
- बंधुआ मजदूरी की नियंत्रित एवं अस्पष्ट परिभाषा तथा अत्यधिक वैधानिकता एवं लम्बी प्रक्रियाएँ।
- वास्तविक स्थितियों का पता लगाने के लिए निरीक्षण और जांच को पृष्ठभूमि में धकेल दिया जाना।
- सजा को लेकर सख्त प्रावधानों का अभाव।
- ऋण से मुक्ति के लिए अपर्याप्त प्रावधान।
- बंधुआ मजदूरों को विकासात्मक सहायता के कार्यान्वयन और उपयोग के लिए विशिष्ट जिम्मेदारियों का

अभाव।

- पर्याप्त दंड प्रावधानों के अभाव में, कानून तोड़ने वालों के खिलाफ उचित कार्रवाई करना मुश्किल था।
- अपनी सुविधा के लिए, भूस्वामियों और साहूकारों ने धोखाधड़ी के माध्यम से इन अधिनियमों के कुछ प्रावधानों को दरकिनार करने के तरीके खोजे।
- जरूरत के समय खेतिहर मजदूरों को उपलब्ध कराने के लिए कोई वैकल्पिक एजेंसी स्थापित नहीं की गई थी।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के 14वें सम्मेलन में सभी सदस्य राष्ट्रों से जबरन मजदूरी को समाप्त करने का अनुरोध किया गया, जिसे तत्कालीन भारत सरकार ने भी स्वीकार कर लिया। जून 1930 में जिनेवा में आयोजित अपने चौदहवें सत्र में अंतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन ने एक उपसंधि का मसौदा अपनाया, जिसमें सभी सदस्य देशों को कम से कम संभव अवधि के भीतर सभी प्रकार के जबरन या अनिवार्य श्रम को खत्म करने की आवश्यकता थी। उपसंधि ने सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए संबंधित सक्षम प्राधिकारी द्वारा जबरन श्रम के उपयोग के लिए कुछ अपवादों का भी प्रावधान किया और उन परिस्थितियों को भी निर्दिष्ट किया जिनके तहत ऐसे जबरन श्रम की अनुमति दी जा सकती है। जबरन या अनिवार्य श्रम पर अंतर्राष्ट्रीय श्रम कन्वेंशन 1930 की धारा 2 "जबरन या अनिवार्य श्रम" को "किसी भी व्यक्ति से अपेक्षित कोई कार्य या सेवा और जिसके लिए कथित व्यक्ति ने स्वेच्छा से प्रस्तुत नहीं किया है" के रूप में परिभाषित करता है।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का संविधान, अंतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन में अपनाए गए उपसंधि को 1931 में विधानमंडल के दोनों सदनों में प्रस्तुत किया गया था इसमें निम्नलिखित प्रस्ताव को अपनाया गया था:

"यह मानते हुए कि जबरन श्रम पर उपसंधि के मसौदे का अनुमोदन तब तक संभव नहीं है जब तक इसकी धारा 2 में ऐसा कोई संशोधन न हो जोकि अपराधी वर्ग अधिनियम, सदाचारी कैदियों को उनके अच्छे आचरण के आधार पर रिहा करने का अधिनियम और भारत में लागू अन्य समान सामाजिक विधानों के तहत लिए जाने वाले श्रम को इसके दायरे से बाहर न किया जाए।"

इस प्रस्ताव को भारत सरकार ने स्वीकार कर लिया और इसे प्रभावी बनाने के लिए प्रांतीय सरकारों से अनुरोध किया गया कि वे:

1. निजी व्यक्तियों, कंपनियों या संघों के लाभ के लिए किए गए जबरन या अनिवार्य श्रम को समाप्त करने के लिए जितनी जल्दी हो सके कदम उठाएं।
2. इच्छित उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए उचित कार्यकारी आदेश जारी करें।

3. सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए जबरन श्रम या अनिवार्य श्रम के उपयोग की अनुमति देने वाले स्थानीय विधानमंडल के किसी भी अधिनियम को, उपसंधि की धारा में दी गयी अनुमति के अनुरूप, 5 साल की संक्रमण अवधि के भीतर संशोधित किया जाना चाहिए।

भारत में श्रम पर गठित राजसी आयोग (1931)

आयोग ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि सामंतवाद के अवशेष देश के विभिन्न हिस्सों में पाए जाते हैं; अभी भी कुछ क्षेत्रों में बंधुआ मजदूरी की प्रणाली विद्यमान है जो गुलामी के समान है।" ऋण–बंधन पर चर्चा करते हुए रिपोर्ट में आगे कहा गया है कि "मजदूर एक समझौते के तहत भूस्वामी से ऋण लेता है जिसमें शर्त होती है कि वह ऋण चुकाने तक उसके लिए काम करता रहेगा। कर्ज चुकाने के बजाय बढ़ता ही जाता है और आदमी तथा कभी–कभी उसका परिवार जीवन भर के लिए बाध्य हो जाता है। रिपोर्ट में महसूस किया गया कि इस बुराई को खत्म करने के प्रयास में विशेष कानून स्वीकार किए गए है, लेकिन अभी भी यह अस्तित्व में है। इसमें बाल श्रम कराने के लिए ऋण देने पर दंड की सिफारिश की गई।

12.5 स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात बंधुआ मजदूरी प्रथा के समापन हेतु प्रमुख प्रयास

भारत सरकार ने देश में जबरन श्रम या बंधुआ मजदूरी के मुद्दे पर लगातार सक्रिय रुख अपनाया है। हमारे संविधान निर्माता बंधुआ मजदूरी (प्रथा) उन्मूलन की विफलता के कारणों से अच्छी तरह परिचित थे। आजादी के बाद पं. जवाहरलाल नेहरू मंत्रिमंडल ने शुरुआत से ही इस दिशा में काम करना प्रारम्भ कर दिया था. राज्य सरकारों ने भी संविधान की मूल भावना के अनुरुप पहल शुरू की। भारतीय संविधान के निर्माताओं ने बंधुआ मजदूरी को समाप्त करने की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए संविधान में ऐसे प्रावधान शामिल किये जिससे श्रमिकों के हितों की रक्षा हो सके। आजादी के बाद के दौर में कुछ बंधुआ मजदूरी उन्मूलन कानून बनाए गए, बंधुआ मजदूरी के उन्मूलन के लिए कुछ समितियों का भी गठन किया गया,

बंधुआ मजदूरों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए संविधान में कई प्रावधान शामिल करने के अलावा इस मुद्दे पर रिपोर्ट भी पेश की गईं। हो गया। अब हम उन पर संक्षेप में चर्चा करेंगे:

उड़ीसा ऋण बंधन उन्मूलन अधिनियम 1948

इसके अंतर्गत किये गये कानूनी प्रावधानों को निम्नलिखित बिंदुओं से समझा जा सकता है:

- कानून लागू होने के बाद किए गए गोथी समझौतों (बंधुआ मजदूर) को पूरी तरह से अमान्य घोषित कर दिया गया।
- मौजूदा गोथी समझौतों के विनियमन के लिए विशेष प्रावधान किए गए।

- इस कानून के लागू होने के बाद किया गया कोई भी श्रम समझौता निर्धारित प्रपत्रों एवं शर्तों को पूरा नहीं करने पर पूर्णतया अमान्य हो जाएगा।
- अमान्य अनुबंध के अनुसार श्रम करवाना दंडनीय अपराध है और इसके लिए 200/– रुपये तक जुर्माना और जुर्माना न भरने पर छह महीने तक की सजा हो सकती है।
- इस कानून के तहत पहाड़ी जनजातियों को कोई भी दस्तावेज, शिकायत, आवेदन या अपील दायर करने के लिए किसी भी शुल्क का भुगतान करने से छूट दी गयी है।
- श्रमिक को श्रम समझौते की अवधि के दौरान किसी भी समय ब्याज (यदि कोई हो) के साथ देय राशि का भुगतान करके श्रम करने के दायित्व से मुक्त होने की स्वतंत्रता है।

राजस्थान सागरी प्रथा उन्मूलन अधिनियम 1961

इस अधिनियम के प्रावधान को निम्नलिखित हैं:

- सागरी प्रथा समाप्त समझी जानी चाहिए और सागरी प्रथा के तहत किसी भी ऋणदाता को अपने कर्जदार को कोई ऋण नहीं देना चाहिए।
- इस प्रथा में राज्य के किसी भी हिस्से में प्रचलित श्रम या व्यक्तिगत सेवा को शामिल करते हुए, स्थानीय भाषा में किसी भी नाम से ज्ञात अग्रिम ऋण देने की कोई भी समान प्रथा शामिल है।
- यदि उक्त तिथि को या उसके बाद, सागरी प्रथा के तहत कोई ऋण दिया जाता है, तो इसे किसी भी मुकदमे या अन्य अदालती कार्यवाही द्वारा वापस नहीं लिया जाएगा और उधारकर्ता को निर्धारित अनुसार श्रम करने या कोई व्यक्तिगत सेवा प्रदान करने के लिए बाध्य या मजबूर नहीं किया जाएगा।
- जो कोई भी, ऐसे प्रत्येक ऋण या जबरन श्रम के लिए, प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट के सामने पेश होने पर, अपने देनदार से उन शर्तों की पूर्ति के लिए श्रम या व्यक्तिगत सेवा करवाएगा जिनके तहत ऋण दिया गया था, कारावास या 500 रु. तक जुर्माने या दोनों का भागीदार होगा।
- इस अधिनियम के लागू होने की तारीख के बाद किए गए प्रत्येक लेनदेन के संबंध में, जहां लेनदार देनदार को ऋण देता है और साथ ही उसे या उसके परिवार के किसी सदस्य को या उसके द्वारा नियोजित किसी नौकर या मजदूर को या उसके किसी रिश्तेदार को या उसके द्वारा नामित किसी व्यक्ति के लिए मजदूरी या व्यक्तिगत सेवाएं या कोई लाभ प्राप्त करता है, तो यह माना जाएगा कि ऋण सागरी प्रथा के तहत दिया गया था जब तक कि यह संतोषजनक ढंग से यह साबित नहीं हो जाता कि इस तरह से करायी गयी मजदूरी या ली गयी व्यक्तिगत सेवाओं का दिए जा रहे ऋण से कोई लेना–देना नहीं है।

उपरोक्त अधिनियमों के अलावा अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयुक्त पद की स्थापना से इन सकारात्मक कदमों को दिशा मिली। इसमें पहले के कानूनों के कार्यान्वयन में आने वाली समस्याओं की ओर ध्यान

आकर्षित किया गया। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयुक्त की 12वीं एवं 15वीं रिपोर्ट इस दिशा में काफी कारगर साबित हुई।

11 अगस्त, 1948 को केंद्रीय श्रम मंत्रालय ने एक विशेष कार्य अधिकारी की नियुक्ति की, जिसकी भूमिका बंधुआ मजदूरी से संबंधित विभिन्न प्रावधानों का अध्ययन करने और उन पर कार्रवाई करने के लिए बहुत महत्वपूर्ण थी। श्रम मंत्रालय ने 10 सितम्बर 1951 को संसद में बंधुआ मजदूरी को यथाशीघ्र समाप्त करने की आवश्यकता पर बल दिया। उसके बाद वरिष्ठ नेता यू.एन. ढेबर की अध्यक्षता में एक आयोग का गठन किया गया, जिसने बंधुआ मजदूरी के उन्मूलन के संबंध में व्यापक प्रावधानों की आवश्यकता जताई और इसे दंडनीय अपराध माना। 1951 से 1974 तक की अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयुक्त की रिपोर्ट बंधुआ मजदूरी समाप्त करने की दिशा में महत्वपूर्ण मील का पत्थर साबित हुईं।

भारतीय संविधान

संविधान के निर्माता बंधुआ मजदूरी की समस्या से अवगत थे, संविधान की **धारा 23 (i)** में कहा गया है, "मानव तस्करी, जबरन श्रम और अन्य समान जबरन श्रम निषिद्ध है और इस प्रावधान का कोई भी उल्लंघन कानून द्वारा दंडनीय अपराध होगा।"

हमारे संविधान की धारा **35 (a) (ii)** के अंतर्गत यह प्रावधान किया गया है कि उन लोगों को सजा देने, जिनके कृत्य धारा 23 के तहत अपराध घोषित किए गए है, संबंधी कानून बनाने की शक्ति संसद को होनी चाहिए न कि राज्य विधान मंडलों को। **धारा 46** राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों में से एक है, राज्य को सीधे तौर पर निर्देशित करती है कि: "जनता के कमजोर तबकों के शैक्षिक एवं आर्थिक हितों को विशेष ध्यान देकर प्रोत्साहित किया जाय, तथा विशेष तौर पर अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों का ध्यान रखा जाय तथा सामाजिक अन्याय व् किसी भी प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा की जाय।"

अन्य प्रयास

10 सितंबर 1951 को, जबरन श्रम के उन्मूलन के लिए किए गए उपायों को इंगित करते हुए, संसद में प्रस्तुत किए गए एक वक्तव्य में, श्रम मंत्रालय ने कहा कि "जबरन श्रम संविधान द्वारा वर्जित है.... इस संदर्भ में कोई नये विधान की आवश्यकता महसूस नहीं होती।" और यही नहीं, "यह प्रस्ताव दिया गया है कि राज्य सरकारों और संबद्ध मंत्रालयों का ध्यान कानून के उन प्रावधानों को बाहर निकाल देने की तरफ आकर्षित किया जाय, जो संविधान को नुकसान पहुंचा रहे हों... और जबरन श्रम की इजाजत दे रहे हों।" इसके अतिरिक्त उनसे यह अनुरोध भी किया जाएगा कि वे संविधान के प्रावधानों का ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक प्रचार करें और यह कि.... धारा 23 का उल्लंघन करते हुए जबरन श्रम कराया जाना गैर कानूनी होगा और भारतीय दण्ड संहिता की धारा 374 के तहत दण्डनीय अपराध माना जाएगा।

धीबर समिति

धीबर समिति (1961) ने बंधुआ मजदूरी के प्रश्न पर विचार किया और आदिवासियों को विशेषकर साहूकारों द्वारा शोषण सेसुरक्षा प्रदान करने की आवश्यकता पर बल दिया। इसने सुझाव दिया कि आदिवासी क्षेत्रों में ऋणग्रस्तता की सीमा, मौजूदा कानूनों के उल्लंघन की प्रकृति और सूदखोरी लेनदेन से जुड़े शोषणकारी तत्वों की सीमा का पता लगाने के लिए नमूना सर्वेक्षण आयोजित किए जाने चाहिए। इसने सिफारिश की कि "राज्य सरकारों के लिए यह भी आवश्यक है कि ये बंधुआ मजदूरी के अस्तित्व की जांच करवाएं। मौखिक, प्रथागत या लिखित समझौतों से उत्पन्न ऋणग्रस्तता के मामलों में, ऋण को भुगतान किया गया माना जाना चाहिए और मजदूर को मुक्त किया जाना चाहिए।" कर्ज का बोझ यदि जारी रहेगा तो आदिवासी कर्जदाता के खिलाफ उठकर खड़े नहीं हो पाएंगे। इस प्रकृति के किसी भी समझौते को न केवल अवैध घोषित किया जाना चाहिए बल्कि कड़ी सजा के प्रावधान वाला अपराध भी घोषित किया जाना चाहिए।

12.6 सारांश

इस इकाई के अंतर्गत मुख्य रूप से बंधुआ मजदूरी प्रथा को परिभाषित किया गया, इसकी मुख्य विशेषताओं, कारणों तथा देश के विभिन्न भागों में इसके प्रचलन की सीमा का वर्णन किया गया। इसके तहत हमें आजादी से पहले बंधुआ मजदूरी प्रथा को खत्म करने के लिए किए गए प्रयासों के बारे में भी पर्याप्त जानकारी प्राप्त हुई। इसमें 1947 से पहले लगाए गए कानूनी प्रतिबंधों की विफलता के कारणों का भी विश्लेषण किया गया। इसमें मूल रूप से इस प्रथा को खत्म करने के लिए स्वतंत्रता के बाद की अवधि में संवैधानिक प्रावधानों, विभिन्न समितियों और आयोगों की रिपोर्ट के संदर्भ में किए गए प्रयासों पर भी चर्चा की गयी।

12.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. बंधुआ मजदूरी का अर्थ समझाते हुए भारत में प्रचलित बंधुआ मजदूरी की प्रथा का विस्तार से वर्णन किया।
2. स्वतंत्रता पूर्व बंधुआ मजदूरी प्रथा उन्मूलन की दिशा में किये गये प्रयासों पर प्रकाश डालिये।
3. स्वतंत्रता के बाद भारत में जबरन मजदूरी को खत्म करने के लिए किए गए प्रयासों की विस्तार से चर्चा कीजिये।

बहुविकल्पीय प्रश्न:

1. भारत के किस क्षेत्र में बंधुआ मजदूरों की सर्वाधिक संख्या देखी जाती है?
    a. सेवा क्षेत्र में
    b. निर्माण क्षेत्र में
    c. कृषि क्षेत्र में

d. औद्योगिक क्षेत्र में

2. वर्तमान समय में बंधुआ मजदूरी किस महाद्वीप में सबसे अधिक होती है?

   a. एशिया में

   b. अफ्रीका में

   c. यूरोप में

   d. दक्षिण अमेरिका में

3. भारत के किस राज्य में बंधुआ मजदूरों की संख्या सबसे अधिक है?

   a. बिहार में

   b. महाराष्ट्र में

   c. उत्तर प्रदेश में

   d. झारखंड में

बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर:

1. (c)2. (a) 3. (b)

12.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. श्रीराम माहेश्वरी, 2009. भारतीय प्रशासन, ओरिएंट ब्लैकस्वान, नयी दिल्ली।
2. के0सरन, 1975. लॉ एंड बोंडेड लेबर सिस्टम, नेशनल लेबर इंस्टिट्यूट बुलेटिन, अंक– 11, नयी दिल्ली।
3. गिरीश अग्रवाल एवं कॉलिन गॉसाल्विस, 2010. दलित और कानून, ह्यूमन राइट्स लॉ नेटवर्क, नयी दिल्ली।
4. महाश्वेता देवी एवं निर्मल घोष, 1999. भारत में बंधुआ मजदूर, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
5. आर0बी.0 जैन, 2009. भारतीय प्रशासन में समकालीन मुद्दे, विशाल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

इकाई – 13 – भारत में नीति – निर्माण प्रक्रिया : बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम 1976 का विषय परीक्षण एवं नवीन परिप्रेक्ष्य

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 परिचय

13.2 भारत में बंधुआ मजदूरी प्रथा और नीति–निर्माण

13.3 भारतीय संसद और नीति निर्माण

13.4 बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम, 1976

13.5 बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 के प्रमुख प्रावधान

13.6 बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 पर उच्चतम न्यायालय का निर्णय

13.7 सारांश

13.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के पश्चात आप,

- भारत में नीति–निर्माण के सन्दर्भ में बंधुआ मजदूरी प्रथा की पृष्ठभूमि को समझ पाएंगे।
- बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 के विषय मेंजान पाएंगे।
- बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 के प्रमुख प्रावधान एवं इस पर उच्चतम न्यायालय का निर्णय के बारे में विस्तार से चर्चा कर सकेंगे।
- उपरोक्त प्रत्येक प्रक्रिया के महत्व एवं उनके अंतर्संबंधों पर प्रकाश डाल सकेंगे।

13.1 परिचय

अपनी पिछली इकाई में, हमने बंधुआ मजदूरी का अर्थ, भारत में बंधुआ मजदूरी की व्यापकता, इस अभिशाप को समाप्त करने के लिए आजादी से पहले और बाद में किए गए प्रयास और इस समस्या को जन्म देने वाले कारकों को समझने का प्रयास किया, जिसके कारण इस समस्या पर कानून बनाने की आवश्यकता महसूस की गई। इस इकाई में हम बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 के सन्दर्भ में नीति–निर्माण की प्रक्रिया पर चर्चा करेंगे। संसद में बंधुआ मजदूरी प्रणाली (उन्मूलन) विधेयक, 1976 के प्रस्तुत किए जाने के बाद से ही, उन कारकों के संदर्भ में नीति–निर्माण पर बारीकी से ध्यान दिया गया, जिनके कारण कानून को तत्काल अधिनियमित करना, उद्देश्यों का निर्माण एवं विभिन्न प्रावधान बनाना संभव हुआ। इस इकाई में हम इन पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

13.2 भारत में बंधुआ मजदूरी प्रथा और नीति–निर्माण

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि भारतीय संविधान में, केन्द्र और राज्यों के बीच शक्ति का विभाजन तीन वैधानिक सूचियों – संघ सूची, राज्य सूची एवं समवर्ती सूची द्वारा किया गया है। वे विषय जो संघ सूची में उल्लिखित हैं भारतीय संसद के विशिष्ट प्रभाव क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं।इसी प्रकार, राज्य सूची में उल्लिखित विषय राज्य विधानमंडलों के अधिकार क्षेत्र में आते हैं और समवर्ती सूची में दिए गए विषय राज्य और केंद्र दोनों के अधिकार क्षेत्र में आते हैं। अवशिष्ट शक्तियां संसद को सौंपी गई हैं। ये तीन सूचियाँ एक तरह से संघीय सरकार और राज्यों के बीच नीति निर्माण के क्षेत्रों को भी परिभाषित करती हैं। संवैधानिक प्रावधानों के अंतर्गत बनाये गये भारत सरकार के (कार्याकलाप निर्धारण) नियम, नीति–निर्माण की प्रक्रिया को नियंत्रित करते हैं। केंद्र सरकार के स्तर पर सभी नीतिगत निर्णय मंत्रिमंडल द्वारा लिए जाते हैं। मंत्रिमंडल, सरकार के कामकाज की सामान्य दिशा, समन्वय और पर्यवेक्षण प्रदान करने के अलावा, नीति के अंतिम निर्माण के लिए भी जिम्मेदार है।

मंत्रिमंडल की कई समितियाँ भी होती हैं, और मंत्रिमंडल समिति की संरचना के आधार पर, या तो सरकार की ओर से लिए गए निर्णयों को अंतिम माना जाता है (जैसे कि जब प्रधानमंत्री समिति का अध्यक्ष होता है) या उसके निर्णयों को पूरे मंत्रिमंडल के समक्ष मंजूरी के लिए भेजा जाता है। नीति–निर्माण प्रक्रिया में वित्त मंत्रालय, कानून मंत्रालय और नीति आयोग की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। हालांकि यह सच है कि शासन की संसदीय प्रणाली के तहत, पदों पर निर्वाचित लोग राष्ट्रीय नीतिगत लक्ष्यों को निर्धारित करने में पहल करते हैं, लेकिन ऐसा करते समय उन्हें वरिष्ठ लोक सेवकों द्वारा परामर्श भी दिया जाता है। विचारणीय विषयों का लेखाजोखा तैयार करने में अधिकारियों की भूमिका निर्णायक होती हैं। वरिष्ठ लोक सेवकों से तात्पर्य उन अधिकारियों से है जो कि मंत्रालयों/विभागों में प्रमुख पदों पर आसीन रहते हैं। भारतीय पृष्ठभूमि में, सचिव, अतिरिक्त सचिव तथा संयुक्त सचिव मूलतः नीति एवं कार्यक्रमों के नियोजक एवं समन्वयकर्ता होते हैं और साथ ही वे सरकारी गतिविधियों के क्षेत्रों को संगठित भी करते हैं। राजनीतिक कार्यपालिका द्वारा प्रदान की गई प्रारंभिक सोच विचाराधीन मुद्दों का

लेखा–जोखा तैयार करने का मार्ग प्रशस्त करती है। विचाराधीन मुद्दों का विवरण समस्या की पृष्ठभूमि, नीति की आवश्यकता और प्रस्तावित नीति के विकल्पों के बारे में व्यापक जानकारी देता है।

अंतर–मंत्रालयी और अंतर्राज्यीय परामर्श

नीति–निर्माण की एक अन्य महत्वपूर्ण प्रक्रिया उन मंत्रालयों से परामर्श करना है जो उस समस्या से निकटता से जुड़े हुए हैं जिस पर नीति निर्धारित की जानी है। इन बैठकों की कार्यवाही न केवल मुद्दे का पुनः स्पष्टीकरण प्रदान करती है, बल्कि विचाराधीन मुद्दों पर अधिक सूक्ष्म बहस के लिए एक मंच भी प्रदान करती है और परिणामस्वरूप संबंधित नीति के मापदंडों की कुछ स्पष्ट समझ प्राप्त होती है। इन बहसों के आधार पर, प्रसारित करने वाले मंत्रालय द्वारा एक प्रपत्र तैयार किया जाता है, जिसमें प्रस्तावित नीति का सारांश प्रदान किया जाता है। यह सारांश संबंधित मंत्रालय के नागरिक अधिकारियों द्वारा तैयार किया जाता है और आमतौर पर इसे संबंधित मंत्री द्वारा अनुमोदित किया जाना होता है।

यदि विषय वस्तु की प्रकृति ऐसी है कि इसके लिए राज्यों की सलाह की आवश्यकता है, तो विभिन्न राज्यों के बीच एक नोट परिचालित किया जाता है ताकि प्रस्तावित नीति पर उनके विचार और सहमति प्राप्त की जा सके। यहां यह उल्लेख करना भी महत्वपूर्ण है कि सारांश का मसौदा मंत्रिमंडल में रखे जाने के बाद, इसे संबंधित मंत्रालयों को उनकी टिप्पणियों के लिए प्रसारित किया जाता है। राज्यों और संबंधित मंत्रालयों के साथ परामर्श के बाद एक मसौदा सारांश, विषय से संबंधित सामान्य मुद्दों पर संक्षेप में प्रकाश डालता है, जैसे नीति की आवश्यकता, पिछली नीति की अपर्याप्तता (यदि कोई हो), नीतिगत उपायों की प्रस्तावित सामान्य रूपरेखा,राज्यों और अन्य संबंधित मंत्रालयों की टिप्पणियाँ, आदि।

नीति तैयार करने में एक अन्य महत्वपूर्ण प्रक्रिया राज्य सरकारों और संबंधित मंत्रालयों से प्राप्त टिप्पणियों पर उपाय निकालना है। यदि मंत्रालयों की टिप्पणियों में कोई बुनियादी खामी नजर आती है तो मंत्रालय के अधिकारी प्रस्तावित नीति पर दोबारा बहस कर सकते हैं। यदि मतभेद फिर भी बने रहते हैं, तो मुद्दे को पुनर्विचार के लिए संबंधित मंत्रालयों को वापस भेज दिया जाता है। हालाँकि, उनसे अनुरोध किया जाता है कि उनके विचार सुनने और नीति का प्रस्ताव करने वाले मंत्रालय द्वारा स्पष्टीकरण दिए जाने के बाद वे अपनी टिप्पणियाँ फिर से भेजें। यदि प्रस्तावित नीति के कुछ पहलुओं पर मंत्रालय के अलग–अलग विचार हैं, तो ऐसे मामलों को आमतौर पर मंत्रालयों के स्तर पर सुलझा लिया जाता है।

मंत्रिमंडल की मंजूरी

विभिन्न संबंधित मंत्रालयों से प्राप्त टिप्पणियों के आधार पर एक संशोधित मसौदा फिर से मंत्रिमंडल के सामने प्रस्तुत किया जाता है। आम तौर पर मंत्रिमंडल मसौदे को मंजूरी दे देता है। हालाँकि, यह स्पष्ट रूप से

सामान्य रूपरेखा प्रदान करता है जिस पर प्रस्तावित कानून बनाया जाना है। कानून बनाते समय संबंधित मंत्रालय को इन बिंदुओं पर ध्यान देना होता है।

विधेयक को तैयार करना

यदि नीति को संसदीय मंजूरी की आवश्यकता होती है, तो भारत सरकार का कानून मंत्रालय संभावित विधेयक का मसौदा तैयार करता है। इस स्तर पर, विधेयक शुरू करने वाले मंत्रालय और कानून मंत्रालय के बीच घनिष्ठ समन्वय रखा जाता है। जब किसी संभावित विधेयक का मसौदा तैयार हो जाता है, तो उसे विषय वस्तु के साथ संबद्ध मंत्रालयों को वापस भेज दिया जाता है। विभिन्न मंत्रालयों के बीच हुई चर्चा के आधार पर विधेयक के मसौदे की सूक्ष्मता से जांच की जाती है। इस स्तर पर, प्रस्तावित विधेयक का उसके उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए विस्तृत विश्लेषण किया जाता है। संबंधित मंत्रालय द्वारा विधेयक को मंजूरी मिलने के बाद, मंत्रिमंडल द्वारा अनुमोदन के लिए एक सारांश तैयार किया जाता है। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि नीति निर्माण की प्रक्रिया, अंतिम विश्लेषण में, एक राजनीतिक निर्णय प्रक्रिया है। नीति निर्माण में राजनीतिक कार्यपालिका और नागरिक अधिकारियों के बीच बातचीत पर टिप्पणी करना बहुत मुश्किल है। वरिष्ठ नागरिक अधिकारी विचारणीय विषयों के लेखे–जोखे को अंतिम रूप दिए जाने के लिए प्रस्तुत करने के समय से ही, नीति निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

13.3 भारतीय संसद और नीति निर्माण

संसदीय शासन प्रणाली में संसद का एक कार्य कानून बनाना है। कार्यपालिका नीति का मसौदा तैयार करती है। संसद पर्याप्त चर्चा के बाद ही उसे मंजूरी देती है। आजादी के बाद से ही भारत ने कृषि मजदूरों को आश्रय देने के लिए कई कानून बनाए हैं। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण हैं: न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948, अनुबंध मजदूरी (विनियमन और उन्मूलन) अधिनियम 1970, बंधुआ मजदूरी प्रणाली (उन्मूलन) अधिनियम 1976, और अंतर–राज्यीय प्रवासी मजदूर (रोजगार और सेवा विनियमन) अधिनियम 1979।

बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अध्यादेश 1975

चूँकि संसद सत्र में नहीं थी, इसलिए श्रम मंत्रालय ने विधि मंत्रालय के परामर्श से विधेयक का मसौदा तैयार किया। श्रम मंत्रालय ने प्रस्तावित कानून को अध्यादेश के रूप में जारी करने के लिए मंत्रिमंडल की मंजूरी भी माँगी। प्रस्तावित अध्यादेश की मुख्य विशेषताएं थीं:

1. बंधुआ मजदूरी प्रथा का उन्मूलन,
2. बंधुआ ऋण चुकाने के दायित्व की समाप्ति,
3. कार्यान्वयन अधिकारियों को आरोपियों की जांच, मुकदमा चलाने और मुकदमा चलाने के लिए प्रशासनिक

और न्यायिक शक्तियां प्रदान करना,

4. जिला और उपखंड स्तर पर निगरानी समितियों का गठन (ये समितियां अध्यादेश के कार्यान्वयन से संबंधित सभी मामलों पर कार्यान्वयन अधिकारियों को सलाह देंगी और मुक्त कराए गए बंधुआ मजदूरों के आर्थिक पुनर्वास को भी सुनिश्चित करेंगी),
5. अध्यादेश के दायरे में आने वाले मामलों की सिविल अदालतों में सुनवाई पर रोक।

बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अध्यादेश 1975 अक्टूबर 1975 में लागू किया गया था।

13.4 बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम, 1976

बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) विधेयक, 1976 को 6 जनवरी 1976 को राज्य सभा में पेश किया गया था। इस विधेयक पर 12 जनवरी 1976 को राज्य सभा में बहस हुई थी। विधेयक को पेश करते हुए, श्रम मंत्री ने विधेयक के उद्देश्यों पर बात की और कहा : "बंधुआ मजदूरी प्रथा के उन्मूलन के लिए विधेयक पर विचार करने का उद्देश्य लोगों के कमजोर वर्गों को आर्थिक और शारीरिक शोषण से बचाना और उससे जुड़े मामलों या घटनाओं पर विचार करना है।"

अपने समापन भाषण में श्रम मंत्री ने 11 जनवरी 1976 को आयोजित श्रम मंत्रियों के सम्मेलन द्वारा परिकल्पित पुनर्वास कार्यक्रमों की चर्चा की, जिसमें यह निर्णय लिया गया था कि राज्य सरकारें विशेष रूप से बंधुआ मजदूरों की पहचान करने के लिए कदम उठाएंगी तथा बंधुआ मजदूरों के अस्तित्व का पता लगाने के लिए सर्वेक्षणों का प्रभावी ढंग से उपयोग किया जाएगा। राज्य सरकारें बंधुआ मजदूरों के सामाजिक और आर्थिक पुनर्वास के लिए योजनाएं बनाएंगी और उन्हें लागू करेंगी तथा राज्य श्रम मंत्रालय समन्वयकारी निकाय के रूप में कार्य करेगा। बंधुआ मजदूरों के पुनर्वास के लिए विशिष्ट योजनाओं को वार्षिक नियोजित कार्यक्रमों का हिस्सा बनाया जाएगा। इस पर अनुच्छेदवार बहस में सदस्यों द्वारा कई संशोधन पेश किए गए। हालांकि, ये सभी संशोधन नकारात्मक थे। बाद में, श्रम मंत्री द्वारा विधेयक को पारित करने के लिए पेश किया गया और इसे पारित कर दिया गया।

12 जनवरी 1976 को राज्य सभा द्वारा विधेयक पारित किए जाने के बाद, 23 और 27 जनवरी को लोकसभा में इस पर बहस हुई। विधेयक पेश करते हुए श्रम मंत्री ने राज्यसभा में दिए गए अपने भाषण को कमोबेश दोहराया, जिसकी मुख्य विशेषताएं हम पहले ही इंगित कर चुके हैं। मंत्री ने सदन को बताया कि केंद्र और राज्य स्तर पर गठित समितियां अधिनियम के तहत उठाए गए कदमों की निगरानी और समन्वय करेंगी। जिला सतर्कता समिति के अध्यक्ष के रूप में जिला मजिस्ट्रेट की भूमिका पर जोर देते हुए उन्होंने बताया कि उनकी शक्तियां त्वरित कार्रवाई करने में मदद करेंगी। पुनर्वास कार्यक्रमों के लिए अलग से प्रावधान करने की जरूरत नहीं है, क्योंकि राज्य सरकारें पहले से ही अध्यादेश के तहत पर्याप्त कार्यवाही कर रही हैं। इसके बाद अनुच्छेदवार बहस हुई। कई संशोधन सुझाए गए, लेकिन सभी को नकार दिया गया। 9 फरवरी 1976 को इस

अधिनियम को राष्ट्रपति की मंजूरी मिली और यह बंधुआ मजदूरी प्रणाली (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 के रूप में अस्तित्व में आया। इस कानून के लागू होने के पश्चात बंधुआ मजदूरी को दंडनीय अपराध माना जाने लगा है। यह कानून उन सभी बातों को अमान्य करता है जिसके अनुसार किसी व्यक्ति को बंधुआ मजदूरी के रूप में अपनी सेवाएं देने के लिए मजबूर किया जा रहा है। इस प्रकार लंबे समय से व्याप्त कुरीतियों को समाप्त करने के प्रयास सफल हुए।

13.5 बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 के प्रमुख प्रावधान

बंधुआ मजदूरी उन्मूलन अधिनियम, 1976 का मुख्य उद्देश्य कमजोर वर्गों के आर्थिक और शारीरिक शोषण को रोकना और उनसे संबंधित मामलों में कार्रवाई करना है। इस अधिनियम ने एकतरफा ढंग से सभी बंधुआ मजदूरों को बंधन से मुक्त कर दिया और उनके कर्ज भी खत्म कर दिये। इस अधिनियम द्वारा बंधुआ प्रथा को दंडनीय अपराध माना गया है। इस कानून को श्रम मंत्रालय और संबंधित राज्य सरकारों द्वारा प्रशासित और कार्यान्वित किया जा रहा है।इस अधिनियम की मुख्य विशेषताओं को इस प्रकार उजागर करने का प्रयास किया गया है:

1. बंधुआ मजदूरी प्रथा को समाप्त किया जाए तथा प्रत्येक बंधुआ मजदूर को बंधुआ मजदूरी के किसी भी दायित्व से मुक्त किया जाए।
2. कोई भी प्रथागत समझौता या अन्य लिखित दायित्व जिसमें किसी व्यक्ति को बंधुआ मजदूरी जैसी कोई भी सेवा प्रदान करने की आवश्यकता होती है, अब निरस्त कर दी गई है।
3. इस अधिनियम के तहत किसी भी बंधुआ मजदूरी करने की बाध्यता से मुक्त या रिहा किए गए किसी भी व्यक्ति को उसके घर या अन्य आवासीय परिसर से बेदखल नहीं किया जाएगा जिसमें वह रह रहा है।
4. इस अधिनियम के लागू होने से ठीक पहले किसी बंधुआ मजदूर की किसी भी बंधुआ ऋण या ऐसे बंधुआ ऋण के किसी भी हिस्से का भुगतान करने का प्रत्येक दायित्व समाप्त माना जाएगा।
5. किसी भी बंधुआ मजदूर की समस्त संपत्ति, जो इस अधिनियम के लागू होने से ठीक पहले बंधुआ ऋण के संबंध में किसी भी बंधक शुल्क, ग्रहणाधिकार या किसी अन्य तरीके से भारग्रस्त है, जहां तक बंधुआ ऋण जुड़ा हुआ है, मुक्त मानी जाएगी और ऐसी गिरवी, प्रभार, ग्रहणाधिकार या अन्य बोझ से मुक्त हो जाएगी।
6. राज्य सरकार जिला मजिस्ट्रेट को ऐसी शक्तियां प्रदान कर सकती है और ऐसे कर्तव्य प्रदान कर सकती है जो इस अधिनियम के प्रावधानों का उचित अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हो।
7. इस अधिनियम के लागू होने के बाद यदि कोई व्यक्ति किसी से बंधुआ मजदूरी कराने को कहेगा तो उसे कारावास और जुर्माने की सजा दी जाएगी। इसी प्रकार यदि कोई बंधुआ व्यक्ति अग्रिम ऋण देता है तो वह भी दण्ड का भागी होगा।

8. कोई भी ऋणदाता किसी भी बंधुआ ऋण के संबंध में किसी भी पुनर्भुगतान को स्वीकार नहीं करेगा जो इस अधिनियम के प्रावधानों के कारण समाप्त हो गया है या व्यपगत माना जाता है या पूरी तरह से चुकाया गया माना जाता है।
9. जिला मजिस्ट्रेट और उसके द्वारा अधिकृत अधिकारी मुक्त बंधुआ मजदूरों के आर्थिक हितों की रक्षा और संरक्षण करके उनके कल्याण को बढ़ावा देंगे। और,
10. प्रत्येक राज्य सरकार, आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, प्रत्येक जिले में और प्रत्येक उप–मण्डल में उतनी सतर्कता समितियां गठित करेगी जितनी वह ठीक समझे।

प्रत्येकसतर्कता समिति के निम्नलिखित कार्य होंगे:

- इस अधिनियम के प्रावधानों और इसके तहत बनाए गए किसी भी नियम के उचित कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए किए जाने वाले प्रयासों और कार्रवाई के बारे में जिला मजिस्ट्रेट या उनके द्वारा निर्दिष्ट अधिकारी को सलाह देना।
- मुक्त किए गए बंधुआ मजदूरों के आर्थिक और सामाजिक पुनर्वास के लिए प्रावधान करना।
- मुक्त किए गए बंधुआ मजदूरों को पर्याप्त ऋण सुविधाएं प्रदान करने के उद्देश्य से ग्रामीण बैंकों और सहकारी समितियों के काम का समन्वय करना।
- इस अधिनियम के तहत संज्ञान लिए गए अपराधों की संख्या पर नजर रखना। और,
- यह पता लगाने के लिए सर्वेक्षण करना कि क्या इस अधिनियम के तहत कोई अपराध किया गया है।

13.6 बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 पर उच्चतम न्यायालय का निर्णय

अधिनियम के लागू होते ही इसमें बहुत सी विसंगतियां सामने आने लगीं। परिणामस्वरूप सर्वोच्च न्यायालय ने बहुत सी जनहित याचिकाओं पर एक साथ सुनवाई करते हुए अधिनियम के कई प्रावधानों को स्पष्ट किया। बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत सरकार के मामले में न्यायालय ने अनुच्छेद 32 के तहत जनहित याचिकाओं को भी वैधता प्रदान की तथा इस मामले में दिए गए निर्णय में बंधुआ श्रम प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम 1976 में "बंधुआ मजदूर" शब्द की परिभाषा का विस्तार किया। न्यायालय ने कहा, "जब भी यह दर्शाया जाता है कि किसी मजदूर को श्रम करने के लिए मजबूर किया गया है, तो न्यायालय यह मान लेगा कि उसे किसी ऋण या आर्थिक उद्देश्य के कारण ऐसा करने के लिए बाध्य किया गया है, इसलिए वह बंधुआ मजदूर है। इस धारणा का खंडन नियोक्ता या राज्य सरकार द्वारा किया जा सकता है। जब तक इस धारणा का खंडन करने के लिए संतोषजनक तथ्य प्रस्तुत नहीं किए जाते, न्यायालय को इस आधार पर आगे की कार्यवाही जारी रखनी चाहिए कि मजदूर एक बंधुआ मजदूर है, जो अधिनियम के प्रावधानों का लाभ उठाने का हकदार है।" परिणामस्वरूप, बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 में संशोधन किया गया। यह संशोधन दिसंबर 1985 में लागू किया गया।

13.7 सारांश

बंधुआ मजदूरी उन्मूलन अधिनियम, 1976 के लागू होने से बंधुआ मजदूरी पर रोक लग चुकी है, लेकिन वास्तविकता यह है कि श्रम कानूनों के लचीलेपन के कारण बंधुआ मजदूरों का शोषण जारी है। हालांकि, मनरेगा जैसी योजनाओं की मदद से बदहाली में जी रहे विस्थापितों की संख्या में कमी आई है। आजादी के इतने वर्षों बाद भी हमारे देश में मजदूरों की स्थिति दयनीय है। शिक्षा और जागरूकता के अभाव में इस वर्ग की ओर किसी का ध्यान नहीं गया है। सरकार को श्रम कानूनों का कड़ाई से पालन सुनिश्चित करना चाहिए, ताकि मजदूरों को शोषण से राहत मिल सके। इस इकाई में, बंधुआ मजदूरी प्रणाली (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 की पृष्ठभूमि में नीति–निर्माण के बाद के चरणों पर विचार किया गया है। इसमें भारत में नीति–निर्माण के संवैधानिक और संस्थागत पहलुओं की संक्षिप्त पृष्ठभूमि उपलब्ध कराई गई है। यहाँ नीति–निर्माण में स्थायी कार्यपालिका और राजनीतिक कार्यपालिका की भूमिकाओं पर भी विचार किया गया है। इस प्रकार, इस इकाई में, नीति–निर्माण में सरकार के विभिन्न अंगों की भूमिका को स्पष्ट करने के लिए, बंधुआ मजदूरी प्रणाली (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 के विशिष्ट मुद्दे के संदर्भ में नीति प्रक्रिया में राजनीतिक कार्यपालिका, नागरिक प्राधिकारियों, संसद और न्यायपालिका की भूमिकाओं का विश्लेषण किया गया है।

13.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अध्यादेश 1975 की विशेषताओं का उल्लेख करते हुये बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 की चर्चा कीजिए।
2. बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 के प्रमुख प्रावधानों पर प्रकाश डालिए।
3. बंधुआ मजदूरों के हितों की सुरक्षा करने में सतर्कता समितियों के कार्यों की समीक्षा कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्नः

1. बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अध्यादेश कब लागू किया गया था ?
   a. अक्टूबर 1974 में
   b. अक्टूबर 1975 में
   c. नवंबर 1975 में
   d. दिसंबर 1975 में
2. बंधुआ मजदूरी (उन्मूलन) अधिनियम किस वर्ष लागू हुआ?
   a. 1974
   b. 1975
   c. 1976
   d. 1977

3. बंधुआ मजदूरी (उन्मूलन) कानून भारत सरकार के किस मंत्रालय द्वारा प्रशासित और कार्यान्वित किया जा रहा

है?

a. श्रम मंत्रालय द्वारा

b. ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा

c. कौशल विकास और उद्यमिता मंत्रालय द्वारा

d. उपरोक्त में से कोई नहीं

बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर:

1. (b) 2. (c) 3. (a)

13.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. श्रीराम माहेश्वरी, 2009. भारतीय प्रशासन, ओरिएंट ब्लैकस्वान, नयी दिल्ली।
2. के0सरन, 1975. लॉ एंड बोंडेड लेबर सिस्टम, नेशनल लेबर इंस्टिट्यूट बुलेटिन, अंक– 11, नयी दिल्ली।
3. लोक प्रशासन पर भारतीय मुखपत्र (Indian Journal Public Adm- खंड–XVI), संख्या 3, जुलाई–सितम्बर।
4. गिरीश अग्रवाल एवं कॉलिन गॉसाल्विस, 2010. दलित और कानून, ह्यूमन राइट्स लॉ नेटवर्क, नयी दिल्ली।
5. महाश्वेता देवी एवं निर्मल घोष, 1999. भारत में बंधुआ मजदूर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. आर0बी.0 जैन, 2009. भारतीय प्रशासन में समकालीन मुद्दे, विशाल प्रकाशन, नई दिल्ली।